!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते !!

उपदेशामृत

हंसोपाख्यान, भूमाविद्या, भक्तिसूत्र
वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी
प्रातः स्मरणस्तव, श्रीराधाष्टक

परम ऋषि श्री सनकादिक

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते !!

देवर्षि श्रीनारद

श्री हंस भगवान

श्रीसुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य

आचार्य वन्दना
श्रीमद्धंस-कुमारांश्च
नारदं मुनि-पुङ्गवम्।
निम्बार्कं श्रीनिवासश्च
प्रणमामि पुनःपुनः।।

श्रीशंखावतार श्री श्रीनिवासाचार्यजी

'निम्बार्कभूषण'
पं. रामस्वरूप गौड

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते !!

उपदेशामृत

हंसोपाख्यान, भूमाविद्या, भक्तिसूत्र

वेदान्तकामधेनु दशश्लोकी

प्रातः स्मरणस्तव, श्रीराधाष्टक

परम ऋषि श्री सनकादिक

देवर्षि श्रीनारद
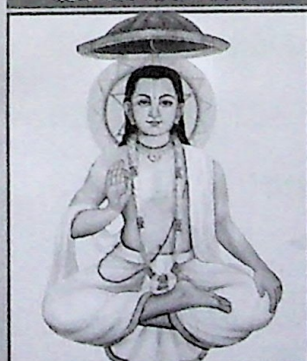
श्री हंस भगवान

आचार्य वन्दना

श्रीमद्धंस-कुमारांश्च
नारदं मुनि-पुङ्गवम्।
निम्बार्क श्रीनिवासश्च
प्रणमामि पुनःपुनः।।

श्रीसुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य

श्रीशंखावतार श्री श्रीनिवासाचार्यजी

पं. रामस्वरूप गौड 'निम्बार्कभूषण'

प्रकाशक : राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र

222, सरस्वती सदन, सौखियों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

ISBN -978-81-88741-51-9

उपदेशामृत

हंसोपाख्यान, भूमाविद्या, भक्तिसूत्र, वेदान्तकामधेनु देशश्लोकी
प्रातः स्मरणस्तव, श्रीराधाष्टक भावार्थ सहित

संस्करण : सन् 2011

लेखक : **पं. रामस्वरूप गौड 'निम्बार्कभूषण'**

प्रकाशक : **राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र**
222, सरस्वती सदन, बिहारी जी गली,
सौखियों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर – 302 001

मूल्य : **15.00/-**

मुद्रक : **जयपुर प्रिंन्टिग सेन्टर, जयपुर • फोन : 2751522**

क्रमाणिका

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य और परम्परा

आद्याचार्य श्री निम्बार्क महामुनि श्रुति, स्मृति, परम्परा के सम्वर्धक, समन्वयक प्रेरक व संरक्षक, है। वेदानुगत सम्प्रदाय में श्री निम्बार्क सम्प्रदाय सर्वाधिक-प्राचीन है। यह सम्पूर्ण मानव समाज में सनातन धर्म की कल्याणकारी परम्पराओं का प्रेरक व पोषक होने से जनसमाज में लोक प्रिय रहा है। जिसकी लोकोपकारी-आचार परम्परायें वैष्णवता के नाम से विख्यात रही है। सात्विकता, सदाचार, धर्म-सहिष्णुता भगवद् भक्ति का यह सम्प्रदाय पर्याय रहा है। समग्रता से सनातन धर्म के आचार-व्यवहार को आत्मसात् करने के कारण वैष्णवता ही सनातन धर्म मानी जाती है।

विष्णु विग्रह-श्रीराधा-कृष्ण की उपासना के साथ श्रुतिस्मृतियों में उल्लिखित समस्त उपास्य स्वरूप, उपासना विधि व धर्माचार व्यवस्थाओं को यथायोग्य रूप से प्रशस्त करने के कारण धार्मिक-समाज में श्री निम्बार्काचार्य, सर्वमान्य जगद्गुरु है। श्री हंस सनक-सनन्दन सनातन, सनत्कुमार, देवर्षि नारद आदि पूर्ववर्ती आचार्यो की धर्मानुगामी शिक्षाओं का श्री निम्बार्काचार्य ने श्रीराधाकृष्ण की उपासना के साथ अभ्युदय किया। आद्य -निम्बार्काचार्य जी के पट्टशिष्य, श्री निवासाचार्य जी से प्रवाहमान निम्बार्काचार्य पीठाधीपति आचार्यों की परम्परा में वर्तमान पीठाचार्य पूज्य श्री राधा सर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी' महाराज विराजमान है। जो इस प्रवाही परम्परा के ४८वें पीठाचार्य है। श्री निम्बार्काचार्य परम्परा के सभी आचार्य जन्म से, कुल से, गुरुदीक्षा-शिक्षा व साधना-तप से आध्यात्मिक उच्चता को प्राप्त ओजस्वी, तेजस्वी और दिव्य प्रतिभा, सम्पन्न गरिमामय व्यक्तित्व के धनी रहे है। जिन्होनें अपने -अपने समय में, धर्म व भक्ति की सर्वोत्तम प्रवृत्तियों से, जन जन में धर्म-भक्ति की नई चेतना को प्रवाहित किया है। आचार्य परम्परा में द्वादश-आचार्य, अष्टादश -भट्टाचार्य व श्री हरिव्यास देवाचार्य से श्री परशुराम देवाचार्य आदि की देवाचार्य परम्परा विद्यमान है। निम्बार्क सम्प्रदाय की आचार्य पीठ पर नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरक्त सन्त ही विराजमान होते हैं।

श्री निम्बार्क सम्प्रदाय की प्रधान आचार्य पीठ के अनुगतविरक्त सन्त महन्त, साधु व गृहस्थ आदि वैष्णव जन है। उन सन्त महन्त साधु वैष्णवों के अपने आश्रम स्थान व भ्रमणशील जमातें हैं व उनका अपने व्यक्तित्व के अनुरूप, अपना साधना मय जीवन है। सम्प्रदाय के अनुगत गृहस्थ जन समुदाय है जो वेद मर्यादित धर्म प्रवृत्तियों का निर्वाह करते हुए भगवद् भावमय जीवन चर्या में लगे हुए हैं। इस सम्प्रदाय के गाँव-गाँव व शहर-शहर में श्री राधा-कृष्ण व अन्य देवों के सेव्य मंदिर हैं। इस भक्ति सम्प्रदाय के अनुगत समय समय पर देश-प्रदेश के नरेश, सिद्ध, तपस्वी, परमार्थी भक्त, विद्वान, कवि, जन-नायक मंत्री अधिकारी अर्थ सम्पन्न श्रेष्ठी जन, चिकित्सक कुशल कामगार संगीत आदि विविध विद्याओं में पारंगत विशिष्ट व आमजन रहे हैं।

दूरभाष : ०१४७७-२२७८२१
फैक्स : २२७१२१

मिति.... ....
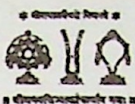
श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्रचूडामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतप्रवर्तक, यतिपतिदिनेश,
राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निम्बार्काचार्यपीठविराजित, अनन्तानन्त श्रीविभूषित

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री "श्रीजी" महाराज

श्रीनिम्बार्कतीर्थ (सलेमाबाद), पुष्कर क्षेत्र, किशनगढ़, जिला-अजमेर (राजस्थान) - ३०५८१५

क्रमांक : दिनांक : 28.12.94

का शुभाशीर्वाद

जयपुर मण्डलान्तर्गत मोखमपुरा (दूदू) निवासी पं. श्री रामस्वरूप जी गौड़ द्वारा लिखित "उपदेशाऽमृत" तथा रसमाधुरी काव्य का आद्योपान्त अवलोकन किया।

'उपदेशाऽमृत' में भगवन्निम्बार्काचार्य प्रवर्तित स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्तानुरूप भावों की सुन्दर अभिव्यक्ति है। महर्षि श्रीसनत्कुमार द्वारा देवर्षि श्रीनारद को उपदिष्ट छान्दोग्योपनिषद के भूमा विद्या प्रकरण का सरलतम शब्दावली में प्रस्तुतीकरण परम स्तुत्य है।

इसी प्रकार 'रस माधुरी' काव्य के दो खण्ड में रसिजन सर्वस्व युगलकिशोर श्यामाश्याम श्रीराधाकृष्ण की ललित लीलाओं का जो चित्रण है वह अतीव रस परिपूर्ण है। वस्तुतः काव्य यथानाम तथागुण है। प्रथम खण्ड में विशेषतः भक्ति तथा वैष्णव स्वरूप का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है।

उक्त दोनों ग्रन्थ जिज्ञासु रसिक जनों के लिए नितान्त पठनीय एवं मननीय हैं।

रसिक रचनाकार निरामय दीर्घायुष्य प्राप्त कर इसी प्रकार रसमय साहित्य का सर्जन करते रहें, ऐसी श्री सर्वेश्वर प्रभु से मङ्गलमयी अभ्यर्चना करते हैं।

शुभ मिति पौष शुक्ल 6 गुरुवार
वि.सं. २०५२

श्रीमन्निखिलमहीमण्डलाचार्य, चक्र-चूड़ामणि, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र, द्वैताद्वैतदर्शन -राधाकृष्णभक्ति प्रवर्त्तक, यतिपतिदिनेश, राजराजेन्द्रसमभ्यर्चितचरणकमल, भगवन्निबार्काचार्य पीठाधीश्वर अनन्तानन्त श्रीविभूषित जगद्गुरु श्री श्रीनिवासाचार्यजी प्रवृत्त

ध्यान

श्री हंसं सनकादीन्देवर्षिं निम्बभास्करंच भजे।
कृपयैषां श्रीकृष्णे परमात्मनि नो भवतु भक्तिः ॥

श्रीकृष्णपादयुगलं शिरसा नमामि, यत्रान्वितः श्रुतिगणो न विरोधमेति।
यद्ध्यानयोगनिरताश्च यदाप्नुवन्ति, केशेन्द्रवन्द्यमनिशं मनसा गिरा च॥

निवेदन

'उपदेशामृत' में हंसोपाख्यान (श्रीमद्भागवत्) भूमा विद्या (छादोग्योपनिषत्) भक्तिसूत्र (देवर्षि नारद उपदिष्ट) वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी, प्रातः स्मरण स्तव, श्रीराधाष्टक, (श्रीनिम्बार्काचार्य प्रवर्तित) मूल के साथ व्याख्या रूप में दिये जा रहे है। हंसोपाख्यान भूमा विद्या प्रकरण व भक्ति सूत्र की मेरे द्वारा विभिन्न अवसर पर स्वाध्याय व अनुशीलन के निमित्त विवेचना हो पाई। इनके बार बार के चिन्तन मनन से आंतरिक सद्प्रेरणा समृद्ध हुई है। विश्वास है कि मूल के अनुसार यह व्याख्या प्रभु अनुराग के निमित्त दिये गये पूज्य आचार्यों के उपदेश को प्रसारित करने में सहयोगी होगी।

सुदर्शनचक्रावतार जगद्गुरु आद्यनिम्बार्काचार्य प्रणीत "वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी, प्रातः स्मरण स्तव" का भावार्थ वर्तमान जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री श्रीजी महाराज द्वारा प्रवृत किया हुआ है। 'श्रीराधाष्टक' का भावार्थ 'कल्याण' मासिक के विशेषांक से पं. श्री रामनारायण दत्त जी शास्त्री का किया हुआ न्यून संसोधन के बाद दिया गया है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित सानुवाद महर्षि वेदव्यास जी की श्रीमद्भागवत, उपनिषद् व देवर्षि नारद भक्तिसूत्र का हमने पठन अवलोकन व मनन किया। श्रद्धेय पं. श्री अमोलक रामजी शास्त्री द्वारा संपादित छान्दोंग्यो उपनिषद् का अध्ययन किया व सातवें अध्याय का मूल इसी से लिया गया है। पूज्यपाद श्री श्रीजी महाराज, श्रीयुगल विहारी श्यामाश्यामँ की कृपा व सत शास्त्रों के अध्ययन-चिन्तन की धारणा से ही यह विवेंचन व्याख्या हुई है अतः इन सभी के हम कृतज्ञ है।

इसमें जो सुन्दर है इन महापुरुषों के अमोघ विचारों का ही सुफल है। इसमें जो त्रुटि रह गई है वह मेरी अपनी समझ की कमी है तथा मुद्रण संबंधी अशुद्धियाँ भी संभव है। अतः भूलों का बालक समझ कर सुधार करवावेंगे।

पूज्यचरण आचार्यश्री ने भूमाविद्याप्रकरण की व्याख्या अवलोकन कर १९९५ में आशीर्वाद प्रदान किया। भक्ति सूत्र के स्वतंत्र वहत् विवेचन ग्रन्थ पर पूज्य श्री का आशीर्वचन व प्रकाशन आचार्य पीठ से स्वतंत्र रूप से सन् २००५ को हुआ। उसी का संक्षिप्त सूत्रार्थ यहाँ दिया गया है। इसी बीच हंसोपाख्यान व्याख्या लिखने में आई। वेदान्त दशश्लोकी, प्रातः स्मरण स्तव, पूज्य आचार्य श्री के भावार्थ व श्रीराधाष्टक कल्याण से है। इस तरह इस 'उपदेशामृत' ने स्वरूप धारण किया। परम पूज्य आचार्यश्री ने इसकी टाईप कृति का अवलोकन किया तथा कृपा पूर्वक आशीर्वाद व प्रकाशन की अनुमति प्रदान की। श्रद्धेय अधिकारी श्री व्रजवल्लभशरणजी द्वारा भावार्थ व श्रद्धेय श्रीगोविन्ददासजीसन्त द्वारा सम्पादित श्रीहंस प्रकरण से भी प्रेरणा प्राप्त हुई। श्रद्धेय युवराजश्री श्रीश्यामशरणदेवजी निम्बार्काचार्यपीठ, प्राचार्य श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय, निम्बार्क तीर्थ से प्रोत्साहन मिला, एतदर्थ हम इनके कृतज्ञ है।

श्री रमा शंकर जी नाटाणी से प्रकाशन के संबंध में सलेमाबाद में ही वार्तालाप हुई और उपदेशामृत व रसोपासना दोनों के प्रकाशन हेतु अपनी सहमति प्रदान करी। इसी तरह यह दोनों ग्रन्थ श्री नाटाणी जी के निर्देशन में राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र, जयपुर से प्रकाशित हो रहे है। एतद्दर्थ श्री नाटाणी जी व राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र जयपुर तथा मुद्रक जयपुर प्रिंन्टिग सेन्टर, मालवीय नगर, जयपुर व अन्य सभी सद्भावी महानुभावों का हम आभार मानते है।

वैष्णवाचार्यों के यह मूल उपदेश महती प्रेरणाप्रद है अतः सन्त, विद्वानों के आशीर्वाद से पाठक वृन्द, शिक्षा व साहित्य जगत तथा जिज्ञासु वैष्णवजन के लिए यह व्याख्या भी प्रेरणाप्रद होगी ऐसा विश्वास कर हम इसे प्रस्तुत कर रहे हैं। उपदेशकर्त्ता सभी प्रतिष्ठापक आचार्य चरणों को दण्डवत् व सादर समर्पण पूर्वक सभी का सादर अभिनन्दन!!

– सविनय

पं. रामस्वरूप गौड़ 'निम्बार्कभूषण'

प्रस्तावना

श्री हंसंच सनत्कुमार प्रभृतीन् वीणाधरं नारदं।
निम्बादित्य गुरूंश्च द्वादश गुरून श्री श्रीनिवासादिकान्।।

वन्दे सुन्दर भट्ट देशिकमुखान्वस्विन्दु संख्या युतान्।
श्री व्यासाद्धरिमध्यगाच्च परतः सर्वान्गुरून्सादरम्।।

भगवत उपासना उपदेश की परम्परा भगवान श्री कृष्ण के हंसावतार से प्रारंभ हुई। श्री हंस भगवान ने सनकादि (सनक सनन्दन सनत्कुमार सनातन) को उपदेश दिया। चित्त की विषय प्रवृत्ति से कैसे मुक्ति हो? विस्तार पूर्वक गुण प्रकृति विवेचन पूर्वक साधना का ज्ञानोपदेश करते हुए सार रूप में श्रीहंस भगवान ने कहा –जीव, सच्चिदानंद को भूलकर देहादि से अपनत्व–ममत्व व विषय भोग से आसक्ति कर लेता है अतः चित्त विषयों में प्रवृत्त होता रहता है और जब जीव देहादि से अपनत्व–ममत्व व विषय आसक्ति त्यागकर "दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निज सुखानुभवों निरीहः।"शम दम से मन निग्रह तृष्णा रहित भगवन् भानापन्न होता है तब निज सुख का अनुभव करता है। निज सुख प्राप्ति के लिए भगवान ने श्लोक 14 में अपना उपास्य स्वरूप बताया – "सर्पतों मन आकृष्य मय्याद्धाऽऽवेश्यते यथा।" संयमित मन को मेरे नित्य निकुंज विराजते धाम के स्परूप में लगावे। इसी श्लोक के पूर्वार्द्ध में यह भी बता गया कि इसी परम्परा (नित्य निकुंज की रसोपासना) का मेरे (श्री कृष्ण के) शिष्य सनकादि भी उपदेश करते है।

सर्वविद्या निष्णात देवर्षि नारद जी परमात्म तत्व बोध के लिए सनत कुमार जी के पास आये। सनत् कुमार जी ने प्रकरणानुसार उत्तरोत्तर परमार्थ अभ्युदय के लिए सब में सर्वेश्वर रसेश्वर परमात्मा की ही प्रतिभा बताई, जगत की सब प्रवृत्ति उस रसात्मा से ही होती है अतः जो सर्वात्मा सर्वेश्वर को जानता है वह रोग शोक दुःख से पार होकर सबको "आत्मवत" देखता है, निश्चय निष्ठा से परमात्म सुख का अनुभव करता है। आहार –विहार और आचार विचार की शुद्धि से अन्तः करण की शुद्धि होती है उक्त क्रम से सबसे परमात्म भाव से व्यवहार करने पर चित्त निर्मल होता और विषय ग्रन्थियों की निवृत्ति होती है। वासना से निवृत्त होने पर अन्तः करण में परमात्मा की अनन्य

स्मृति स्थापित होती है और ज्ञानोदय होता है। यह निजसुखानुभव भाव के अनुसार तीन तरह का होता है। ईष्ट भाव से परमेश्वर अनुभव होने पर सर्वत्र सब में, सर्वेश्वर श्री कृष्ण का ही बोध होगा, जीव की बृहत्तर ब्रह्म भावना व सर्वत्र संमवेदन भाव से सबमें अपनापन स्वयं के समान अहंता अर्थात् "मैं" पन का निजानुभव होगा तन–मन–चित्त बुद्धि से "मैं" अर्थात सर्वथा सर्वत्र "जीवात्मा" ही प्रतीत होगी। आत्मभाव से परमात्म अनुभव होने पर सर्वत्र सबमें "आत्मा" ही "आत्मा" अनुभव होगी यह देवर्षिनारद जी को "भूमा" बोध का उपदेश हुआ। परम्परागत भगवत उपासना उपदेश को प्रशस्त करते हुए देवर्षि नारद जी के भक्ति सूत्र में भगवद् भक्ति के समग्र भाव व साधन विधियों का दिग्दर्शन कराया है। भक्ति के सर्वेच्च मान के रूप में माधुर्य भाव से गोपियों की रसेश्वर सर्वेश्वर श्रीमाधव मुकुन्द की शरणागति को सर्वश्रेयष्कर व भक्ति को "परम–प्रेम" रूप में उपदिष्ट किया। शुचिता व सदाचार सात्विक आचार–विचार को वैष्णवों के लिए परम अवलम्बनीय बताया। परम्परा प्राप्त वैष्णवी सदाचार विचार के साथ वृंदावन निकुंज में विराजित रसेश्वर सर्वेश्वर श्री राधा माधव के लीला स्वरूप की भाव–भक्ति व प्रेम सान्निध्य प्राप्त्यार्थ "गोपाल–मंत्रराज" का उपदेश देवर्षि नारद जी ने श्री निम्बार्काचार्य जी को प्रदान किया;

श्री निम्बार्काचार्य जी ने श्रुति–स्मृति व्यक्त उपास्य उपासना भाव की समस्त विधियों का सम्मान करते हुए वृन्दावन धाम लीलावतार रसेश्वर सर्वेश्वर श्री राधाकृष्ण की गोपी भावानुगत प्रपन्न "प्रेमविशेषलक्षणा" रसोपासना भक्ति का उपदेश दिया। इस तरह धरा पर श्रीनिम्बार्काचार्य जी वृन्दावनस्थ लीलावतार श्रीराधाकृष्ण की भक्ति के प्रवर्त्तक है। श्रीनिम्बार्काचार्य जी का आविर्भाव श्रीकृष्णावतार के समय द्वापरान्त पर 5107 वर्ष पूर्व हुआ था। इससे पूर्व श्रीसर्वेश्वर के अनन्य ध्यानानुराग से ही नित्य निकुंज धाम विराजित युगल सरकार की उपासना, दर्शन व सेवा भक्ति होती थी। धराधाम पर श्रीराधाकृष्ण का लीलावतार होने पर श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने लीला स्वरूप की उपासना का उपदेश दिया परम प्रेमपूर्वक स्मरण, ध्यान, धारणा के साथ **("ध्यायेम कृष्णं कमले क्षणं हरिम्", "अंगे तु वामे वृष्भानुजां मुदा" , "स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्।।")** लीला विग्रह श्रीराधाकृष्ण की मधुर सेवाभक्ति को प्रवृत्त किया।

श्री सर्वेश्वर

गोर- श्यामावभासं तं सूक्ष्मं दिव्य मनोहरम्।
वन्दे सर्वेश्वरं देवं श्रीसनकादिसेवितम्।।

श्री सर्वेश्वर शालिग्राम श्रीहरि विग्रह है। इन सर्वेश्वर की जगद्गुरू श्री निम्बार्कपीठाचार्य द्वारा परम्परा से सेवा आराधना होती आई है। श्री ब्रह्मा जी के मानस पुत्र परम ऋषि सनकादिको को श्री हंसावतार पर जिन्होंने भगवत भक्ति का उपदेश दिया, उसी समय से जगद् की उत्पत्ति स्थिति व लय के नियन्ता श्री कृष्ण का यह प्रभा विग्रह परम पूज्य हो गया स्वयं श्रीहरि की सम्पूर्ण प्रभा इस में प्रतिष्ठित है। श्री हरि का भक्ति उपदेष्ठा के रूप में हंसावतार प्रथम अवतार है श्री सनतकुमारादि श्री हरि से उपदेश ग्रहण करने वाले सृष्टि के प्रथम मानस ऋषि हैं व जगत में भक्ति के प्रथम आचार्य हैं और भगवान श्रीसर्वेश्वर परम प्रभु श्री कृष्ण के प्रथम स्वयं श्री विग्रह है। संसार का प्रथम तीर्थ क्षेत्र पुष्कर है जहाँ ब्रह्मा का प्रकाट्य हुआ परम ऋषि सनकादिको ने जीवन धारण किया। हंस भगवान का प्राकाट्य हुआ सनकादिको को भक्ति का उपदेश मिला और श्रीहरि का परिपूर्ण प्रभावान श्रीविग्रह, श्रीसर्वेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित और पूज्य हुआ। यह सृष्टि के आदिकाल सतयुग के समय की बात है।

हंस भगवान से प्राप्त वैष्णव भक्ति उपदेश को परमाचार्य सनत् कुमारो ने जगत में प्रवृत्त किया (श्रीमद् भागवत् के ११ स्कन्द के १३वें अध्याय) श्री हंस भगवान से प्राप्त भक्ति उपदेश को परमाचार्य श्रीसनत्कुमार जी ने देवार्षि नारद जी को दिया (छादोग्य उपनिषद् अध्याय ७)

परमाचार्य सनकादिको द्वारा पूज्य श्रीसर्वेश्वर का श्रीविग्रह आचार्य परम्परा प्रवाह से वैष्णवभक्ति के मूलाचार्य देवर्षि नाराद जी को प्राप्त हुआ। पराक्षैत्र हरिद्वार आनन्द वन में श्रीमद् भागवत कथामृत के साथ सनकादि कुमारों ने परमाराध्य श्री सर्वेश्वर का पूज्य विग्रह देवर्षि नारद जी को प्रदान किया। जब कि "भूमा विद्या" का उपदेश सतयुग के उत्तरार्ध में दिया गया। श्री नारद जी ने अरूण ऋषि पुत्र आरूणी श्री नियमानन्द जी को भक्ति ज्ञानोपदेश "गोपाल मंत्र राज" दीक्षा तो

बाल्यवस्था में ही प्रदान कर दी किन्तु परम्परागत आचार्यों के परमाराध्य श्रीसर्वेश्वर का पूजार्थ श्रीविग्रह कलयुग के कुछ वर्षों उपरान्त प्रदान किया। श्री ब्रह्मा जी द्वारा श्रीसुदर्शन चक्रावातार की तपः परीक्षा के बाद श्रीनियमानन्द को ब्रह्मा जी ने ही श्री निम्बार्क नाम सम्बोधन किया। इसी समय परम्परा प्रवाह से चली आ रही श्रीसर्वेश्वर विग्रह व सेवा श्री नारद जी ने श्रीनिम्बार्क को प्रदान की और श्रीनिम्बार्काचार्य वैष्णवभक्ति के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए।

श्री वेद व्यास व श्री निम्बार्काचार्य दोनों समकालीन है। पुराण कालीन साहित्य में श्रीनिम्बार्काचार्य कहीं जन्मनाम "नियमानन्द" कहीं अरूण पुत्र होने से "आरूणी" सुदर्शन चक्रावतार होने से "सुदर्शन" व भक्ति तप के रूप में देदीप्यमान होने से "श्रीनिम्बार्क" व परम्परागत भक्ति के आचार्य प्रतिष्ठित होने पर "श्री निम्बार्काचार्य" के सम्बोधन से उल्लिखित किये गये है।

श्रीसर्वेश्वर सविशेष निर्विशेष दोनों ही तरह उपासनीय है। समस्त दास्य सख्य आत्मनिवेदन आदि सब भाव भक्ति स्वीकार करते है। ज्ञान, योग कर्म सभी विधियों से उपास्य है।

श्री सर्वेश्वर की पूजा उपासना परम ऋषि सनकादिकों को हंस भगवान से प्राप्त हुई सनकादिको से देवर्षि नारदजी को और नारद जी से जगद्गुरू श्रीनिम्बार्काचार्य जी को प्राप्त हुई। जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी से इनके पट्ट शिष्य श्रीनिवासाचार्य जी को प्राप्त हुई तब से जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य पीठ प्रतिष्ठित आचार्य द्वारा परम्परा से श्रीसर्वेश्वर की पूजा उपासना प्रवाहवान है। वर्तमान में श्रीसर्वेश्वर, श्रीहंस भगवान से ४८वें श्री निम्बार्काचार्य पीठ निम्बार्क तीर्थ स्लेमाबाद, अजमेर राजस्थान में विराजमान श्रीनिम्बार्क पीठाधीश्वर श्रीश्रीजी श्री राधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य जी महाराज द्वारा संसेवित है।

प्रधान वैष्णवाचार्य की श्री सर्वेश्वर शलिगराम उपासना अनुपालन से भी उपासक, विरक्त साधु सन्त, वैष्णव जन व देवालयों में श्री विष्णु विग्रह के रूप में श्री शालिगराम की प्रतिष्ठा, उपासना व सेवा पूजा हो रही है।

परिचय

1. **नाम** : **पं. रामस्वरूप गौड़** पुत्र श्री हनुमान प्रसाद श्रीमती गुलाब देवी
2. **जन्म** : 14 फरवरी 1950 मौखमपुरा, जयपुर राज.।
   फाल्गुन कृष्ण 13, संवत 2006
3. **शिक्षा** : इन्टर मीडियट-रा.भा.प्र.स. वर्धा की "कोविद" उपाधि।
   सेवा : साहित्य, संस्कृति, धर्म व दर्शन के अध्येता, मनीषी, समालोचक, व्याख्याकार, कवि व लेखक।
4. **प्रकाशन** : पांच समालोचना, पांच ग्रन्थ व्याख्या, दो वृहद् ग्रन्थ सम्पादन, पँाच काव्य संग्रह प्रकाशित।

कल्पना के बाद, विश्व-विराट्, सनातन-निरूपण, वेदान्त-दशश्लोकी व्याख्या, केनोपनिषद्- ईशावास्योपनिषद् व्याख्या, रस-माधुरी, मीरा की भक्ति परम्परा का समालोचनात्मक अध्ययन, जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री श्रीजी श्रीराधासर्वेश्वर शरणदेवाचार्य प्रणीत स्तव साहित्य का अध्ययन, देवर्षिनारद विरचित भक्ति-सूत्र, अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री राधा सर्वेश्वर शरण देवाचार्य श्री श्रीजी प्रणीत साहित्य के संदर्भ - धर्म के मूल तत्व, मनुजाश्रय, पदमाधुरी। "आलोक पुञ्ज" हस्त लिखित मसिक आ. सा. सभा. सागोद (कोटा) तीन अङ्क, जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री श्रीभट्ट देवाचार्य विरचित। 'युगल शतक' अध्ययन "रसोपासना" (समालोचना-2011) शाश्वत अभिनय। **सम्पादन** – जगद्गुरु निम्बार्काचार्य पीठाधीश्वर श्री श्रीजी श्री राधा सर्वेश्वर शरणदेवाचार्य जी का अभिनन्दन ग्रन्थ "निम्बार्क गौरव"(2004), अखिल भारत वर्षीय विराट् सनातनधर्म सम्मेलन, स्मारिका 2004 प्रकाशन 2008

5. **आदर सम्मान** :

(1) **अखिल भारतीय सहस्त्राब्दि हिन्दी सेवी सम्मान 2006**, नई दिल्ली (राष्ट्र भाषा हिन्दी व साहित्य के प्रचार-प्रसार हेतु) (2) **"निम्बार्क भूषण" निम्बार्काचार्य पीठ सलेमाबाद**, अजमेर, राज. (निम्बार्क सम्प्रदाय की साहित्यिक सेवाओं के लिये) (3) **श्रीमान् उपखण्ड अधिकारी दूदू द्वारा प्रशस्ति पत्र** 15.08.2006, (सर्व शिक्षा अभियान व गांधी पुस्तकालय वाचनालय में सहयोग हेतु) (4) राजस्थान पत्रिका "कर्णधार" योजनान्तर्गत समारोह में सम्मान मौखमपुरा, 2006 (स्थानीय स्तर पर शिक्षा, संस्कृति व समाज सेवा के लिये) (5) श्री भीमराव अम्बेडकर विचार मंच जयपुर शाखा मौखमपुरा में प्रतीक चिन्ह द्वारा सम्भान (संस्कृति व समाज सेवा के लिये) (6) **श्री निम्बार्क कल्याण सम्मान**-2009 पी.जी. स्वास्थ्य कल्याण जयपुर द्वारा (धर्म, दर्शन व साहित्य, संस्कृति की सेवा हेतु, अभिनन्द पत्र 1975, आलोक साहित्य सभा सांगोद (कोटा) व प्रबुद्ध नागरिकों द्वारा (क्षेत्र में साहित्यिक गतिविधियों के क्रियान्वयन हेतु)

समय - समय पर विभिन्न समारोह व संस्थाओं द्वारा समादरित।

पता – 15-प्रथम, गोपाल नगर, निकट गोविन्द नगर, डी.सी.एम., अजमेर रोड़, जयपुर (राजस्थान)
मोबाईल : 94613 09315

स्थाई पता – ग्राम पो. मोखमपुरा, वाया - सांभर, जि.- जयपुर (राज.)

हंसोपाख्यान

श्री हंस भगवान द्वारा परम ऋषि सनत्कुमारादिको प्रदत्त उपदेश

ध्यान

कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभं।
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्।।
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कंठे च मुक्तावली।
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः।।

श्रीमद्भागवद् के ग्यारहवें स्कन्ध के तेरहवें अध्याय में श्री हंस भगवान द्वारा श्री सनत्कुमारादि परम ऋषियों को प्रदत्त उपदेश का प्रसंग है। यह प्रसंग भगवान श्री कृष्ण ने ज्ञान व भगवद् पिपासु मुमुक्षु जन के लिए अतिविशिष्ट माना है अतः इस का दो बार श्रीहंस व श्रीकृष्ण अवतार पर उपदेश किया है। हम इस प्रसंग का स्वमती अनुसार भावार्थ प्रस्तुत करते है।

अध्याय के तरहवें श्लोक तक श्री उद्धव को भगवान श्रीकृष्ण धर्म भक्ति योग व ज्ञान आदि का अन्तिम रहस्य बताते हुए कहते हैं। पञ्चाभूतात्मक काल प्रवाहित प्रकृति के तीन गुण है-सत्व रज और तम। प्रकृतिगत इन तीनों से ही देह का निर्माण होता है

इन गुणों के अधीन देह व बुद्धि के अनुरूप ही कर्म व स्मृति का निर्माण होता है। इस स्मृति के अनुसार प्राणी, जगत में प्रवृत होता है। यही कर्म स्मृति चित्त को विषयों से लिप्त करती है।

पञ्चभूतात्मक (व्यष्टि-समष्टि) प्रकृति के अनुसार ही चित्त के भी तीन गुण वर्तते है। यह गुण आत्मा के नहीं है। जीवात्म परमात्मा का अंश है। अतः विषय संग से प्रकृति को व विषय निर्लिप्त होकर परमात्मा को प्राप्त होता हैं। रसात्मा श्रीकृष्ण इस बुद्धि आदि का सामर्थ्य है आत्मा तो सर्वथा विशुद्ध है। मनुष्य (जीवात्मा) का परम पुरुषार्थ विशुद्ध परमात्म तत्त्व श्रीकृष्ण को प्राप्त करना है। यह परमात्मा श्रीकृष्ण बुद्धि की विशुद्ध अवस्था में ही प्राप्त होते है। अतः यहाँ कहा है।

श्रीभगवानुवाच -

सत्वं रजस्तम इति गुणा बुद्देर्न चात्मनः।
सत्त्वे नान्यतमों हन्यात् सत्त्वेन चैव हि।।१।।

सत्त्व गुण के द्वारा रज-तम का बुद्धि से शमन कर देना चाहिए। मनसा-वाचा कर्मणा निरन्तर सत्त्व के आचरण से जब चित्त रज-तम रहित सर्वथा शान्त हो जावे तब सत्त्व गुण का भी शमन कर देना चाहिए। सत्त्व आचरण ग्रहस्थादिको के लिए शास्त्र वर्णित लौकिक निस्काम धर्माचरण है। इस निस्काम धर्माचरण द्वारा रज-तम और बाद में सत्त्व गुण से भी निवृत्ति मिलती है। शास्त्रों में कहा है कि अत्यन्तावस्था की प्राप्ति के लिए भक्त साधक को वेद विहित वर्ण अहं का भी त्याग कर देना चाहिए। अर्थार्थ परम विशुद्ध भाव भूमि के लिए लौकिक सकाम प्रवृति का त्याग कर देना है। चित्त भूमि में गुणों का प्रवाह रहते ग्रहस्थादिको को लौकिक धर्म के त्याग का निषेध हैं। गुण चाचल्य से रहित, विशुद्ध-चित्त भूमि निर्मल अवस्था है। गुण चाचल्य रहित विशुद्ध चित्त अवस्था पर ही लौकिक आसक्ति के त्याग रूप विरक्ति पूर्वक परमेश्वर श्री राधाकृष्ण की परा भक्ति में प्रवेश है। विरक्त दीक्षा उपरान्त साधु भेषधारी का सांसारिक व्यवहार से त्याग हो जाना चाहिये। सामान्यतः भक्त साधक के चित्त चाचल्य का शमन शनैः शनैः होता है तब लौकिक व्यवहार से विरक्ति हो पाती है। शान्त चित्त से परम्परागत भगवद्‌भाव करते-करते प्रभु कृपा से चित्त चाचल्य का शमन होकर विशुद्ध परा भक्ति प्राप्त हो जाती है। जैसे बृज गोपियों को प्राप्त हुई थी।

सत्त्वाद धर्मो भवेद् वृद्धात् पुंसो मद्भक्तिलक्षणः।
सात्त्विकोपासया सत्त्वं ततो धर्मः प्रवर्तते।। 2।।

रज-तम मुख्य रूप से विषयों में रत है सत्त्व से शम-दम, तितिक्षा, धैर्य, सहिष्णुता, आस्था, श्रद्धा आदि विवेक प्रवृत है। अतः विशेषतः सत्त्व बुद्धि से धर्म-शौचाचार की प्रवृति होती है। निरन्तर श्री हरि स्मरण आदि भक्ति परम्परा के अङ्ग व धर्म शौचाचार के पालन से भक्ति भाव व धर्म की वृद्धि होती है और सत्त्व सम्पन्न बुद्धि में ''पुंसोमद् भक्तिलक्षण'' मुझ परम प्रभु के भक्ति रूप लक्षण प्रकट होते है। यहाँ दो निर्देश निहित है पहला-सामान्य धर्माचरण व निस्काम कर्त्तव्य पालन दूसरा स्वभावत निरन्तर भगवद् भाव उपासना, सात्विक आहार-विहार और सब कार्यकलाप में शुचिता व पवित्रता का सदैव पालन करना योग्य है। इस से भगवद् भाव की निरन्तर व नवीनतम भाववृद्धि होती रहती है। भावापन्न वैष्णव, वैष्णव परम्परा की पवित्रता व प्रभु सेवा सदाचार का पालन नहीं करेंगे तो भगवाद् भाव के पतन का भय रहता है। अतः भक्ति अवलम्बन के लिए निरन्तर भक्ति भाव उपासना व सात्त्विक सदाचार की आवश्यकता है।

धर्मो रजस्तमो हन्यात् सत्त्व वृद्धिरनुत्तमः।
आशु नश्यति तन्मूलो ह्यधर्म उभयें हते।। ३।।

सामान्यजन भावापन्न वैष्णव व विरक्त साधु सब के मन में रज-तम गुण रहता है। यह रज-तम किसी संस्सर्ग व स्मृति से प्रभावी न हो, इसके लिए शम-दम व पवित्र आचार-विचार से निर्मल सत्त्व की वृद्धि होती हैं। इस निर्मल सत्त्व के प्रभाव से बुद्धि में व्याप्त रज-तम और रज-तम से उत्पन्न अधर्म व अधर्म जनित कर्म प्रवृतियों का उत्पात हतप्रभ और समूल नष्ट हो जाता है। शान्त हो जाता है।

आगमोऽपः प्रजादेशः कालः कर्म च जन्म च।
ध्यानं मन्त्रोऽथ संस्कारों दशैते गुण हेतवः।। ४।।

पञ्चभूतात्मक प्रकृति गुणमयी हैं देह व्यवहार में आने वाली समस्त प्रकृति भी गुणमयी है। इस व्यवहार संसर्ग से बुद्धि पर गुण का प्रभाव पड़ता है, अतः इन प्रमुख दस वस्तुओं का व्यवहार जिस गुणभाव से होगा, तनमन बुद्धि से वैसे ही गुण प्रभाव की कर्म प्रवृति होगी। श्लोकानुसर यह व्यवहार में आने वाली वस्तुयें शास्त्र, जल, प्रजाजन, देश, समय, कर्म, जन्म, ध्यान, मंत्र और संस्कार आदि दश हैं ।

विशेषत: वैष्णव जीवनचर्या में इन दश संदर्भों के सात्त्विक व्यवहार पर जोर दिया है। श्रीमद् भागवद् श्री रामायण श्री गीता आदि आर्ष ग्रन्थ व आचार्य परम्परा के सद्ग्रन्थों का पठन-मनन-श्रवण, नदी-कूप सरोवर का पवित्र अमनिया जल, अन्न, फल, फूल, सब्जी, पाकशाला में भोज्य पदार्थ के पकाने में शुद्धता-शुचिता, प्रभु के सेवा भोग उपरान्त शुद्ध स्थान पर पवित्र तन-मन से भोजन पाना व पवना आदि अन्न-जल पान की पवित्रता, सात्त्विक सज्जनों का सुसंग करना व समाज की सात्त्विक संस्कार की विधि व संस्कृति का अनुपालन करना व सामुहिक रूप से सात्त्विकता को प्रोत्साहित करना, अधर्म व असात्त्विकता को हतोत्साहित करना, संध्यावन्दन व प्रात: सायं प्रभु सेवा स्मरण, कीर्तन समय पर करना, ऋतु व देश काल के अनुसार अपनी जीवनचर्या का पालन आदि जन्मवर्ण के अनसुार कुलमर्यादा का पालन करना, सात्त्विक वृति से अपने कर्म-कर्त्तव्य का निर्वाह निष्ठा व लगन से करना। अपने ईष्ट श्रीराधा माधव निकुञ्ज बिहारी का ध्यान स्मरण निरन्तर रखना व श्री गुरु प्रद्त्त नाम व मंत्र का श्री गुरु के आदेशानुसार जप करना, वैष्णवी संस्कार का अनुपालना करना व सामान्य वर्णाश्रमी सनातन धर्म संस्कारों का यथा योग्य रीति से अनुपालन करना। पहले श्लोक में कहे अनुसार इस सात्त्विक वैष्णवी आचार व्यवहार से मल आवरण क्षीण हो जाता हैं।

तत्तत् सात्त्विकमेवैषां यद् यद्वृद्धाः प्रचक्षते।
निन्दन्ति तामसं तत्तद् राजसं तदुपेक्षितम्।। ५।।

यह पूर्वोक्त दस वस्तुवों का संसर्ग व व्यवहार जिनके जीवन में निरन्तर शुचिता से होता है उन पवित्र वैष्णवजन पुण्यात्माओं की वृहत सात्त्विक धारणा से प्रज्ञाचक्षु खुल जाते है ऐसे सात्त्विक प्रज्ञावान ही माननीय वृद्ध है। यह प्रज्ञावान विद्वान ही धर्म और अधर्म को पहचानते है। अत: यह जिस सत् धर्म की प्रशंसा करते है वही सत् है, जिस व्यवहार की निन्दा करते है वही तामस है, जिस गुण व्यवहार की उपेक्षा करते है वही राजस है।

सात्त्विकान्येव सेवेत पुमान सत्त्वविवृद्धये।
ततो धर्मस्ततो ज्ञानं यावत् स्मृति पोहनम्।। ६।।

प्रारब्ध, संचित, क्रियमान, आदिकर्म प्रभाव से निर्मित्त स्मृति द्वारा जीव कर्म आवरण से लिप्त होता है। जब तक यह कर्म आवरण नही छूटता तब तक जीव को श्री राधा माधव प्रभु की प्राप्ति नही होती है। प्रभु की भक्ति करते हुए भी जीव को यह

कर्म आवरण विचलित और प्रभावित करता रहता है, अतः वैष्णव जन पवित्र वैष्णवी आचार व्यवहार का सात्त्विक श्रद्धा से पालन करते रहें, व मन लगाकर प्रभु स्मरण भजन करते रहें। पवित्र सात्त्विकता के सेवन से तेजस्वी सत्त्व की वृद्धि होगी इस सत्त्व तेज के सामने प्रारब्ध कर्मों से उत्पन्न जो उत्पात् है, वे शान्त हो जाते है और भक्ति पुरुषार्थ से जीवन की बाधाए क्षीण हो जाती है। शनैः शनैः जीव का मलावरण नष्ट हो जाता है और परमेश्वर निष्ठा से यर्थाथ का ज्ञान हो जाता है।

वेणुसंघर्षजो वह्निर्दग्धवा शाम्यति तद्वनम्ः।
एवं गुणव्यत्ययजो देहः शाम्यति तत्क्रियः।। ७।।

बासों के संघर्ष से उत्पन्न अग्नि से वन जल जाता है और वन जलाकर अग्नि फिर शान्त हो जाती है। ऐसे ही श्री सर्वेश्वर के निर्धारित सनातन नियम से जीवन प्रारब्धादि कर्म संघर्ष परिणामतः सृष्टि में पञ्चभौतिक देह धारण करता है। और कर्म संघर्ष से कर्मविपाका अग्नि उत्पन्न होती है उसमें जीव, कर्म प्रभाव से कालक्रम में प्रवृत्त होकर जन्म-जीवन व अवसान आदि गति प्रवृति करता है। बासों का संघर्ष अग्नि की उत्पत्ति का हेतु है और कर्म प्रभाव जीव के जन्म का हेतु है दोनों की ही गति संघर्षशील है। जब वन में सब कुछ ज्वलनशील पेड़ पदार्थ जल कर भस्म हो जाता है तो अग्नि शान्त हो जाती है बस इसी तरह देह चेतन्य मनुष्यादि को इस संसार रूपी वन में उत्पन्न होना समझो। जन्म लेकर यह देह धारी प्राणी संसार के विषय रूपी दावानल में अपने को जलाता रहता है। जीवन में यह आग स्वयं प्राणी ने ही अपने भोगेच्छा से उत्पन्न की है। इन भोग प्रवृतियों की आग में एक दिन प्राणी जल कर भस्म हो जायेगा। अर्थात् शरीर थक जाने पर उसका अवसान हो जावेगा और जीवात्मा अपनी कर्म गति अनुसार अन्यत्र प्रवृत हो जावेगी। इस देहधारी चेतन्य की दूसरी गति और है जो पूर्व में सत्त्वादि धर्म आचरण करने वाले पवित्रात्मा वैष्णवों के लिए कही गई। देहधारी मनुष्य द्वारा सात्त्विक पवित्र धर्माचरण और श्री हरि की भक्ति से विषयि बुद्धि व प्रारब्ध कर्म प्रवृत्ति का प्रभाव भस्म हो जाता है और परम वैष्णव श्री राधामाधव नित्य निकुञ्ज बिहारी की अविचल सेवा भक्ति को प्राप्त करता है।

उद्धव उवाच :

विदान्ति मर्त्याः प्रायेण विषयान् पदमापदाम।
तथापि भुञ्जते कृष्ण तत् कथम् श्वरवराजवत।। ८।।

भगवान ने पूर्व सात श्लोक में कह दिया कि सात्त्विक वैष्णवी आचरण से मेरी भक्ति के लक्षण प्रकट होते है। मुझ श्रीकृष्ण की भक्ति के साथ पूर्वोक्त शास्त्र, जल, ध्यान, मंत्र कर्मादि दस तरह के सात्त्विक वर्ताव से सत्त्व की वृद्धि होती है, व प्रभु भक्ति के लक्षण प्रकट होते है। वैष्णवी आचरण से रज-तम कर्मो से उत्पन्न विघ्न नष्ट हो जाते है ज्ञानचक्षु खुल जाते है। और यह भी कह दिया कि फिर भी अधिकांश मनुष्य बॉसों के संघर्ष से अग्नि उत्पत्ति की तरह देह धारण करते हैं। और देह धारण करके भी विषयों के संघर्ष में ही जीवन को दग्ध करते हुए मर जाते है वे जो प्रभु भक्ति व सात्त्विक पवित्र धर्माचरण का अवलम्बन नहीं करते। भगवान, सब मनुष्य जानते है भोगते है और अन्य को भोगते हुए देखते है कि यह विषय कर्म जीवन में घोर विपत्तियों को देने वाले है। दुःख क्लेश व कष्ट भोगते हुए भी ये मनुष्यादि कुत्ते गधे व बकरे के समान इन विषयी कर्मो में ही गति प्रवृति करते रहते है। ऐसा क्यों है ?

श्री भगवानुवाच

अहमित्यन्यथा बुद्धिः प्रमत्तस्य यथा हृदि।
उत्सर्पति रजों घोरं ततो वैकारिकं मन ।। ९ ।।

पहले बता दिया उसी को भगवान दूसरी तरह से फिर कह रहे है। रजोगुण से विषयों के प्रति प्रवृति होती है। इसी रजोगुण बुद्धि से ही संसार में ममत्व व अहंत्व उत्पन्न होता है। इस रजोगुण से प्रभावित हुए मन द्वारा विषयासक्त कर्मो के घोर संकल्प-विकल्प उत्पन्न होते है। इस तरह रजोगुण से प्रमत्त हुई बुद्धि सत्य तथ्य से अन्य विषयों की अहंमियतता मानकर उन में ही भ्रमण करने लगती है।

रजोयुक्तस्य मनसः सकल्पः सविकल्पकः
ततः कामो गुणध्यानाद् दुः सहः स्याद्धि दुर्मते ।। १० ।।

रजोगुण युक्त मन विषयासक्ति से संकल्प-विकल्प वाला होकर चंचल हो जाता है। भोग वासनायें निरन्तर चित्त पर छाई रहने व निरन्तर विषय चिन्तन से, विषय कर्मो की ही प्रवृति होती रहती है। सकाम बुद्धि से दुर्मति उत्पन्न होती है और उसी से कदाचरण मय कृत्य का दुःसाहस भी उत्पन्न होता है।

करोति कामवशगः कर्माण्य विजितेन्दियः।
दुःख खोदर्काणि सम्पश्यन् रजोवेग विमोहितः ।। ११ ।।

रजोगुण का प्रवृति चक्र बताते हुए भगवान श्रीकृष्ण उद्धव की जिज्ञासा का समाधान कर रहे है। उद्धव ने पूछा था - यह विषयी कर्म आपदजन्य है इनके क्लेश व कष्ट भोगते तथा इनके दुःखदायी परिणाम जानते हुए भी यह मनुष्य बरबस इन विषय कर्मों में ही प्रवृति क्यों करता है ? भगवान बता रहे है- इस सत्य तत्त्व का प्रतिरोधी रजोगुण है इससे विपर्यय मति उत्पन्न होती है रजोगुणी माया से प्रमत्त बुद्धि के कारण, भौतिक जगत को ही यर्थाथ सुख मान कर भौतिक कामनाओं के वश हो, लोभ, मोह, मद अहंकार के वश हुआ, अपने कर्म परिणाम को जानता और सुनता हुआ भी मोहासक्ति के वेग से विषय कर्मों में बरबस ही प्रवृति करता है। सारांशतः रजोगुण के वेग से मोहित होकर विषय कर्म करता है।

रजस्तमोभ्यां यदपि विद्वान् विक्षिप्तधीः पुनः।
अतन्द्रितो मनो युञ्जन दोष दृष्टिर्न सज्जते।। १२।।

जो छटेश्लोक में कह दिया था कि सात्त्विकता का सेवन करने वाले विद्वान सज्जन को भी यह रज तम यदा-कदा विचलित करते है। गहरी ज्ञान दृष्टिप्रदान करने के लिए भगवान यहाँ फिर कह रहे है। सात्विक व्यवहार का पालन करने वाले विद्वान को भी यद्यपि यह रज तम विक्षिप्त करते है किन्तु विवेक दृष्टि सम्पन्न सज्जन, मन व विषय के दोष का चिन्तन कर, इन विषयों से आसक्त नहीं होता और अपने आप को सत् व्यवहार में लगाये रहता है।

अप्रमत्तोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः।
अनिर्विण्णो यथाकालं जितश्वासो जितासनः ।।१३।।

पूर्वोक्त श्लोक में बतायें अनुसार विवेकी, विषय प्रभाव से अप्रमत्त रहता हुआ, विषयों से आकृष्ट नही होता। **विवेकी अनासक्त रहता हुआ वैष्णवी सदाचरण का व्यवहार करते हुए धीरे-धीरे अपने मन को मुझ परमेश्वर श्री कृष्ण को अर्पित कर दे।** गुरु निर्देश पूर्वक भक्ति साधन करता हुआ, प्रभु नाम स्मरण से भगवद स्मृति को स्थिर करता हुआ प्राण वायु की चञ्चलता का शमन करें और मन को श्री राधामाधव प्रभु के आसन्न स्थापित करें। भजन से ही मन के मल दूर होते हैं व प्रभु शरणागति भाव स्थिर होता है।

एतावान् योग आदिष्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।
सर्वतो मन आकृष्य मयद्धाऽऽवेश्यते यथा।। १४।।

भगवान श्री कृष्ण कह रहे है – प्रिय उद्धव यह जो मैंने तुझे परम प्रभु से अनन्य भाव वाला योग बताया **यह भक्ति योग मेरे शिष्य सनकादि कुमारों का जगत में उपदेशित किया गया है,** लोक विख्यात किया हुआ है। इस भक्ति योग का प्रारम्भ कथन करके इस का अन्तिम लक्ष्य बता रहे हैं। विषय चंचलता रहित **एकाग्र मन को नित्य निकुञ्जस्थ वृदावन धाम के मेरे स्वरूप में लगा लें।**

यहां भगवान ने स्वयं अपने उपास्य स्वरूप वृन्दावन निकुञ्ज धाम श्री श्यामा-श्याम बिहारी की उपासना का संकेत दिया। यह भक्ति उपासना श्री हंस सनकादि नारद व श्री निम्बार्काचार्य को उपदिष्ट होती हुई श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के नाम से आज भी जगत में प्रवृत है।

उद्धव उवाच

यदा त्वं सनकादिभ्यो येन रूपेण केशव।
योगमादिष्टवानेतद् रूपमिच्छामि वेदितुम्।। १५।।

उद्धव जी को यह जिज्ञासा हुई कि भगवान श्री कृष्ण ने सनकादिक को यह उपदेश कब किया था। अतः वे भगवान श्री कृष्ण से पूछते है – केशव आपने परम ऋर्षि सनकादिक को कब और किस रूप में यह परम भक्ति योग उपदिष्ट किया था कृपया बताईये।

श्री भगवानुवाच

पुत्रा हिरण्यगर्भस्य मानसाः सनकादयः।
पप्रच्छुः पितरं सूक्ष्मां योगस्यैकान्तिकीं गतिम्।। १६।।

भगवान श्री कृष्ण ने बताया – परम ऋषि सनकादिक ब्रह्मा जी के मानस पुत्र है। उन्होंने पिता ब्रह्मा जी से योग के सूक्ष्म और अन्तिम लक्ष्य के सम्बन्ध में इस प्रकार पूछा है।

सनकादय ऊचुः

गुणेष्वाविशते चेतो गुणश्चेतसि च प्रभो।
कथमन्योन्य संत्यागो मुमुक्षोरतितितीर्षोः।।१७।।

पिताश्री चित्त तो गुणों से आवेष्ठित रहता है, गुण, विषय से भावित होता है और आवरित भी रहता है तथा गुण भी चित्तावृत्ति के अनुसार प्रवृत होते है। इस प्रकार गुण

व चित्त परस्पर लिप्त रहते है फिर मुमुक्ष प्राणी संसार सागर से पार उतरने के लिए इनका प्राथिक्य कैसे कर सकता है ?

श्री भगवानुवाय

एवं पृष्टो महादेवः स्वयं भूर्भूतभावनः।
ध्यानमानः प्रश्नबीजं नाभ्यपद्यत कर्मधीः।।१८।।

यह जीव परमेश्वर श्री हरि का अशं होने से परामृत है। देहात्म बुद्धि में स्थित होकर यह विषय स्मृतियों से आबद्ध हो जीवन में प्रवृत होता है। जीव चित्त की विषय स्मृतियों से मुक्त होकर मुक्त होता है। परम ऋषियों की शंका जीव के विषय आवृतियों में लिप्तता संबंधी ही है। क्योंकि त्रिगुणात्मक जगत में प्राणी देह धारी है और यह जीव ही विविध देह धारण कर प्राण प्रवृति करता है फिर जीव जगत में रहता हुआ इन से कैसे विलग हो सकता है ? इस लिप्तता से कैसे विलग हुआ जा सकता है। योग समाधी के समय विषय स्मृति दब जाती है और फिर विषय संग पाकर प्रवाहित होने लगती है अतः यह गुण विषयक स्मृति कैसे दूर होगी। इनके शमन हुए बिना परमगति सम्भव नहीं अतः पहले हमें इस का समाधान बताईये। भगवान कहते हैं-ध्यान करने पर भी परमपिता ब्रह्माजी, सनकादिकों के इस प्रश्न का उत्तर नहीं पा सकें।

स मामचिन्तयद् देवः प्रश्नपारतितीर्षया।
तस्याहं हंसरूपेण सकाशमगमं तदा ।।१९।।

कर्म-प्रवण बुद्धि में तो परमतत्व स्थिर नहीं रहता पर जब भक्ति भाव से सर्वेश्वर श्रीकृष्ण को याद किया जाता है तो वे प्रकट हो जाते है। ऐसा ही हुआ। भगवान श्रीकृष्ण कहते है - उन्होंने जब मुझ भगवान श्री कृष्ण का भक्ति भाव से चिन्तन किया तब हंस रूप धारण करके मैं उनके सामने प्रकट हो गया।

दृष्टवा मां त उपव्रज्य कृत्वा पादाभिवन्दनम्।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा प्रपच्छुः को भवानिति।। २०।।

सनकादिक कुमार और ब्रह्मा जी मुझे देखकर पास आये मेरे चरणों में प्रणाम किया और मुझ हंस स्वरूप से पूछा - आप कौन है ?

इत्यहं मुनिभिः पृष्टस्तत्त्व जिज्ञासुभिस्तदा।
यद्वोचमहं तेभ्यस्तदुद्धव निबोध मे।।२१।।

अब तक सनकादि कुमार सांख्यमत से पितामह की आज्ञानुसार योग साधना में रत थे और उपास्य के रूप में ध्यानरत अद्वैय ज्योति स्वरूप को ही मानते थे। निर्मल चित्त थे अत: भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव जी को बताया कि-उद्धव सनकादिक कुमार परम तत्व के अधिकारी जिज्ञासु थे इस कारण मैं हंस स्वरूप में उनके सामने प्रकट हुआ और उनके पूछने पर जो वार्तालाप हुआ वह तुम मुझ से सुनो।

वस्तुनो यद्यनानात्वमात्मनः प्रश्न ईदृशः।
कथं घटेत वो विप्रा वक्तुर्वा मे कआश्रयः।।२२।।

ब्राह्मणों यदि आप के विचारानुसार जगत वस्तुयें नानात्व अथार्थ द्वैत से रहित अद्वैय है तो आत्मा को परस्पर जानने का प्रश्न कैसे उपयुक्त हो सकता है और यदि मैं उत्तर दूँ तो किस जाती गुण क्रिया और सम्बन्ध से उत्तर दूँ। क्योंकि प्रश्नोत्तर में मैं तो उपदेष्टा और आप श्रोता होते है। तब यह आपकी मान्यता का खण्डन रूप नानात्व अर्थार्थ द्वैत ही होगा। अद्वैत की मान्यतानुसार तो जड़ जीव प्रकृति की एक ही उपस्थिति होगी तब जगत की स्थिति भी मुझ नियन्ता के अधीन नहीं होगी। इस तरह तो भोग्ता प्राणी (जीव) भोग्य जड़-प्रकृति व शाश्वत-नियम, नियंत्रण तथा नियन्ता की प्रथक व विलक्षण प्रतिभायें नहीं होगी, ऐसे में जीव तथा प्रकृति के गुण कर्म स्वभाव व परिणाम का भी लोप हो जायेगा। यह जगत नियंत्रणहीन स्वछन्द कहलायेगा और इस स्वछन्दता में फिर परमार्थ की जिज्ञासा कौन करेगा? ऐसी ही मान्यता वाले भोगवादी व नास्तिक भी होते है। आप तो परमार्थ में जिज्ञासा रखते है अत: आप विचारपूर्वक अपने मत का परीक्षण कीजिये। क्योंकि आप परम तत्व को अद्वैत द्वैत प्रवृत्ति पूर्वक मुझ ईश्वर में निष्ठा रखते हुए विनय पूर्वक जिज्ञासा करते है अत: आप विचार पूर्वक अपने मत का परीक्षण कीजिये । क्योकि आप परम तत्व को अद्वैय मानकर द्वैत आस्था पर्वूक मुझ ईश्वर में निष्ठा और जिज्ञासा रखते हैं। योगिक ध्यान से भी मेरी ही अभिलाषा हृदय में धारण किये हुए है और चित्त की निर्मल अवस्था को पा गये है ओर ध्यान की अमित प्रभा को ही एक मात्र परम पूर्ण स्वरूप मानने के कारण अतृप्त है। आपने मुझे जानने का श्रद्धा से प्रश्न किया है। अत: मैं आपके सामने उपस्थित हुआ हूँ। निहितार्थ है मेरे स्वाभाविक स्वरूप द्वैता-द्वैत मत का उपदेश करता हूँ जो आपको सहज भाव से पूर्ण तृप्ति प्रदान करेगा।

पञ्चात्मकेषु भूतेषु समानेषु च वस्तुतः।
को भवानिति वः प्रश्नो वाचारम्भो ह्यनर्थकः।। २३।।

पञ्चभूतात्मक जगत के चर अचर समस्त प्राणी शरीरों में पंच पदार्थ ही है। इस तरह देखे तो भी समस्त प्राणी शरीर में समानता ही है। इस तरह जगत के सभी प्राणी पदार्थों में भूतात्मक समानता हैं और पूर्व मान्यता के अनुसार जगत नानात्व से रहित हैं तब भी सब कुछ एक ही हैं,अद्वैय है। ऐसी मान्यता रखने पर भी आप कौन है ? आप का यह प्रश्न वाचारम्भण मात्र हैं, और निरर्थक भी है।

श्लोक 22 व 23 में श्री सनकादिक से भगवान श्री हंस का परम तत्त्व का गहन चिन्तन कराने के लिए पैना प्रति प्रश्न है-जगत वस्तुओं को नानात्व से रहित अद्वैय मानते हों तो अन्य आत्म तत्त्व कि जिज्ञासा क्यों करते हों ? और ऐसा ही होता है तो यह घटना कैसे घटेगी ? मैं किस आश्रय से वक्ता बनूं, आप किस आश्रम से श्रोता बने ? जगत की समस्त वस्तुयें भूतात्मक है - यह पदार्थगत समानता सब में हैं। इस पदार्थ गत समानता को ही अद्वैय रूप मानने पर समान भूतात्मक देह से आपका यह प्रश्न वाचारभ्मण व निरर्थक है। परमार्थतः नाना वस्तुओं को ही आत्म रूप माना जाय तो भी अन्य उपस्थिति नहीं होती। अब विचारणीय यह हैं ''जगत में निश्चय ही परमेश्वर की सर्वात्मकता व सर्वशक्तिमत्ता है अतः सर्वव्यापक होने से वह अद्वैय है। परमेश्वर जीव जगत के गुण , कर्म, प्रकृति परिणाम के नियन्ता होकर भी इन से निर्लिप्त हैं परमेश्वर का जगत निश्चय ही नानात्मकता है देहधारी अलग अलग जीवात्मायें है, जो देह चेतना लेकर जगत जीवन में घटना प्रवृत्त हैं। देह पिण्ड के साथ भिन्न-भिन्न जड़ वस्तुऐं है। जिनका कालचक्र से स्वरूप परिवर्तन होता है और परस्पर एक दूसरे से, एक दूसरे को प्रभावित करती हुई घटना प्रवृत है।'' यथा तथ्य को भगवान श्री कृष्ण हंस स्वरूप से आगे स्पष्ट करते हैं।

मनसा वाचसा दृष्टया गृह्यतेऽन्यैरपीद्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा।।२४।।

जगत में मन वाणी दृष्टि और अन्य इन्द्रियों से जो कुछ देखा सुना विचारा और किया जाता है। वह सब मुझ सर्वेश्वर श्री कृष्ण से अन्य नहीं है मुझ से विलग नहीं है।

यहाँ यह जो पूर्व प्रति प्रश्न हुआ और जो सनकादिकों को परम तत्त्व के सम्बन्ध में भ्रम बना हुआ था उसका समाधान हो गया। कैसे हुआ? देखिये पहला तो जगत मन, वाणी, दृष्टि और इन्द्रियों से देखा, सुना, विचारा और क्रिया प्रवृत होता देखा जाता हैं। अतः जगत नानात्व रूप है। अब इस जगत का दो रूप हुआ। एक मन, वाणी आदि इन्द्रियों की क्रिया प्रवृति वाला चेतन प्राणी और दूसरी जगत की अचेतन वस्तुयें जो चेतन प्राणी द्वारा वर्ताव में लाई जाती हैं। यह दोनों ही पंचभूत व त्रिगुणात्मक है। अब भगवान कहते है - यह मुझ से विलग नहीं है, सर्वात्मा होने से मैं अद्वैय हूँ। आत्म शक्ति व नियन्ता रूप में मैं इनसे निर्लिप्त भाव से जुड़ा हुआ हूँ और इनका पृथक-पृथक गुण कर्म प्रवृत्तियों का परिणाम प्रदान करता हूँ। भगवान श्री कृष्ण ने अपना अद्वैत स्वरूप भी बता दिया और द्वैत स्वरूप भी बता दिया। नियन्ता जगत का यह स्वाभाविक भिन्ना-भिन्न स्वरूप है। यह द्वैता-द्वैत दर्शन श्री हंस भगवान से परम ऋर्षि सनत्कुमारादि को सनत्कुमारादि से, देवर्षि नारद को देवर्षि नारद से श्री निम्बार्काचार्य को प्राप्त हुआ जो स्वाभाविक द्वैता -द्वैत या भिन्ना-भिन्न दर्शन के रूप में जगत प्रसिद्ध हुआ। जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने अत्यन्त स्पष्ट करते हुये इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

सर्वंहि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुति स्मृतिभ्यों निखिलस्यवस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपताऽपि श्रुति सूत्र साधिताः।।

— श्रीनिम्बार्काचार्य

यह जगत विज्ञान वास्तविक व सार्थक हैं जगत की यह समस्त वस्तुयें यथार्थक हैं और यह श्रुति-स्मृति ग्रन्थ जिनमें यह सारा विज्ञान यथावत उल्लेखित है वह वास्तविक, सार्थक व यथार्थ है यह जगत ब्रह्मात्मक हैं। अर्थार्थ परम परमेश्वर श्री कृष्ण ही जगत के उत्पत्ति स्थिति व लय के कर्त्ता है और विराट ब्रह्माण्ड तथा जगत में भिन्ना-भिन्न दृष्टिगत होने वाली जड़-चेतन वस्तुओं में आत्म शक्ति रूप से अवस्थित है। यह जगत त्रिरूपात्मक है दैहिक भौतिक दैविक व भोक्ता (जीव) भोग्य नियन्ता रूप में यह त्रिरूपात्मक है। वेद श्रुति में वर्णित सूत्रों के अनुरूप जिस को जैसे बताया हैं, उस समय उस को उसी अनुसार साधन व्यवहार करने पर यथातथ्य यथावत व्यवहार वर्ताव करने पर यह जगत धर्म अर्थ काम मोक्ष के रूप में सार्थक होता है। अतः यह जगत ब्रह्मात्मक

होने से परमेश्वर श्री कृष्ण से अभिन्न भी हैं। परमतत्त्व, आत्म रूप में निर्लिप्त होकर अवस्थित रहने से अभिन्न जगत वस्तुओं में गुण विषय प्रवृति के कारण, भिन्न-भिन्न भी देखा जाता है। यह भिन्ना-भिन्न, भेदा-भेद या स्वाभाविक द्वैता द्वैत सिद्धान्त वेद वेदान्त अनुरुप श्री हंस सनकादिक देवर्षि नारद व श्री व्यास आदि ने भी प्रतिपादित किया है। वही श्री निम्बार्काचार्यजी ने प्रतिपादित किया जो वास्तविक सनातन धर्म दर्शन है।

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः।
जीवस्य देहं उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः।।२५।।

जीव को जो जानने की जिज्ञासा होती हैं वह जीव के स्वभावानुसार ही है। यह जीव परमेश्वर का अंश होने से ज्ञान स्वरूप है। जगद्गुरु निम्बार्काचार्य जीव के सम्बन्ध में कहते हैं ''ज्ञान स्वरूपञ्च हरेधीनं शरीर संयोग वियोगयोग्यम्। अणुहि जीवं प्रति देह भिन्न ज्ञातृत्त्वन्तं यदनन्तमाहु।।''

यह जीव ज्ञानस्वरूप अर्थार्थ प्रकाशवान परमेश्वर अंश व चैतन्य हैं परा-पर सभी स्तर को जानने की जिज्ञासा करने वाला व जानने की योग्यता रखने वाला है व कृति-वृति की क्षमता रखने वाला हैं। यह जीव अणु स्वरूप व प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न तथा शरीर धारण करने व छोड़ने की योग्यता वाला है। ब्रह्माण्ड में जीव की अनन्त संख्या है व जीव सीमित क्षमता वाला है व कर्मानुसार विभिन्न योनियों में आवागमन करने वाला है।

काल प्रवाहित त्रिगुणात्मक जगत में देवता मनुष्य अण्डज उद्भिज जरायुज आदि योनियों में जीव स्थिति हैं। देहधारी जीव अपनी क्षमता में कर्म प्रवृत्ति के लिए स्वतंत्र है किन्तु फल परिणाम परिस्थिति के लिए स्वतंत्र नहीं है फल परिणाम परिस्थिति के लिए नियन्ता परमेश्वर के अधीन है। प्राकृत पदार्थ भोग्य है व देह स्थित जीव में भोगने की क्षमता होने के कारण भोक्ता कहा गया है इन सब के नियामक अद्वितीय क्षमतावान स्वयं सर्वेश्वरश्री कृष्ण हैं।

भोक्ता जीव द्वारा भोग्य प्रकृति के विषयों की आसक्ति के निरन्तर चिन्तन करते करते यह चित्त प्राकृत गुण विषय से आवरित हो जाता हैं। परस्पर संलिप्त हो जाता हैं। निर्मलावस्था में यह जीव शुद्ध बुद्ध और मुक्त है। विषयों के चिन्तन से यह मलावरित होता है जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने इस तथ्य को कहा है - 'अनादिमाया परियुक्त रूपं' वह अनादि माया से आसक्त होकर देह धारण

यहाँ यह जो पूर्व प्रति प्रश्न हुआ और जो सनकादिकों को परम तत्त्व के सम्बन्ध में भ्रम बना हुआ था उसका समाधान हो गया। कैसे हुआ? देखिये पहला तो जगत मन, वाणी, दृष्टि और इन्द्रियों से देखा, सुना, विचारा और क्रिया प्रवृत होता देखा जाता हैं। अतः जगत नानात्व रूप है। अब इस जगत का दो रूप हुआ। एक मन, वाणी आदि इन्द्रियों की क्रिया प्रवृति वाला चेतन प्राणी और दूसरी जगत की अचेतन वस्तुयें जो चेतन प्राणी द्वारा वर्ताव में लाई जाती हैं। यह दोनों ही पंचभूत व त्रिगुणात्मक है। अब भगवान कहते है - यह मुझ से विलग नहीं है, सर्वात्मा होने से मैं अद्वैय हूँ। आत्म शक्ति व नियन्ता रूप में मैं इनसे निर्लिप्त भाव से जुड़ा हुआ हूँ और इनका पृथक-पृथक गुण कर्म प्रवृत्तियों का परिणाम प्रदान करता हूँ। भगवान श्री कृष्ण ने अपना अद्वैत स्वरूप भी बता दिया और द्वैत स्वरूप भी बता दिया। नियन्ता जगत का यह स्वाभाविक भिन्ना-भिन्न स्वरूप है। यह द्वैता-द्वैत दर्शन श्री हंस भगवान से परम ऋर्षि सनत्‌कुमारादि को सनत्कुमारादि से, देवर्षि नारद को देवर्षि नारद से श्री निम्बार्काचार्य को प्राप्त हुआ जो स्वाभाविक द्वैता -द्वैत या भिन्ना-भिन्न दर्शन के रूप में जगत प्रसिद्ध हुआ। जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने अत्यन्त स्पष्ट करते हुये इस परम्परा को आगे बढ़ाया।

सर्वंहि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुति स्मृतिभ्यों निखिलस्यवस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपताऽपि श्रुति सूत्र साधिताः।।

— श्रीनिम्बार्काचार्य

यह जगत विज्ञान वास्तविक व सार्थक हैं जगत की यह समस्त वस्तुयें यथार्थक हैं और यह श्रुति-स्मृति ग्रन्थ जिनमें यह सारा विज्ञान यथावत उल्लेखित है वह वास्तविक, सार्थक व यथार्थ है यह जगत ब्रह्मात्मक हैं। अर्थार्थ परम परमेश्वर श्री कृष्ण ही जगत के उत्पत्ति स्थिति व लय के कर्त्ता है और विराट ब्रह्माण्ड तथा जगत में भिन्ना-भिन्न दृष्टिगत होने वाली जड़-चेतन वस्तुओं में आत्म शक्ति रूप से अवस्थित है। यह जगत त्रिरूपात्मक है दैहिक भौतिक दैविक व भोक्ता (जीव) भोग्य नियन्ता रूप में यह त्रिरूपात्मक है। वेद श्रुति में वर्णित सूत्रों के अनुरूप जिस को जैसे बताया हैं, उस समय उस को उसी अनुसार साधन व्यवहार करने पर यथातथ्य यथावत व्यवहार वर्ताव करने पर यह जगत धर्म अर्थ काम मोक्ष के रूप में सार्थक होता है। अतः यह जगत ब्रह्मात्मक

होने से परमेश्वर श्री कृष्ण से अभिन्न भी हैं। परमतत्त्व, आत्म रूप में निर्लिप्त होकर अवस्थित रहने से अभिन्न जगत वस्तुओं में गुण विषय प्रवृति के कारण, भिन्न-भिन्न भी देखा जाता है। यह भिन्ना-भिन्न, भेदा-भेद या स्वाभाविक द्वैता द्वैत सिद्धान्त वेद वेदान्त अनुरुप श्री हंस सनकादिक देवर्षि नारद व श्री व्यास आदि ने भी प्रतिपादित किया है। वही श्री निम्बार्काचार्यजी ने प्रतिपादित किया जो वास्तविक सनातन धर्म दर्शन है।

गुणेष्वाविशते चेतो गुणाश्चेतसि च प्रजाः।
जीवस्य देहं उभयं गुणाश्चेतो मदात्मनः।।२५।।

जीव को जो जानने की जिज्ञासा होती हैं वह जीव के स्वभावानुसार ही है। यह जीव परमेश्वर का अंश होने से ज्ञान स्वरूप है। जगद्गुरु निम्बार्काचार्य जीव के सम्बन्ध में कहते हैं ''ज्ञान स्वरूपञ्च हरेधीनं शरीर संयोग वियोगयोग्यम्। अणुहि जीवं प्रति देह भिन्न ज्ञातृत्त्वन्तं यदनन्तमाहु।।''

यह जीव ज्ञानस्वरूप अर्थार्थ प्रकाशवान परमेश्वर अंश व चैतन्य हैं परा-पर सभी स्तर को जानने की जिज्ञासा करने वाला व जानने की योग्यता रखने वाला है व कृति-वृति की क्षमता रखने वाला हैं। यह जीव अणु स्वरूप व प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न तथा शरीर धारण करने व छोड़ने की योग्यता वाला है। ब्रह्माण्ड में जीव की अनन्त संख्या है व जीव सीमित क्षमता वाला है व कर्मानुसार विभिन्न योनियों में आवागमन करने वाला है।

काल प्रवाहित त्रिगुणात्मक जगत में देवता मनुष्य अण्डज उद्भिज जरायुज आदि योनियों में जीव स्थिति हैं। देहधारी जीव अपनी क्षमता में कर्म प्रवृत्ति के लिए स्वतंत्र है किन्तु फल परिणाम परिस्थिति के लिए स्वतंत्र नहीं है फल परिणाम परिस्थिति के लिए नियन्ता परमेश्वर के अधीन है। प्राकृत पदार्थ भोग्य है व देह स्थित जीव में भोगने की क्षमता होने के कारण भोक्ता कहा गया है इन सब के नियामक अद्वितीय क्षमतावान स्वयं सर्वेश्वर श्री कृष्ण हैं।

भोक्ता जीव द्वारा भोग्य प्रकृति के विषयों की आसक्ति के निरन्तर चिन्तन करते करते यह चित्त प्राकृत गुण विषय से आवरित हो जाता हैं। परस्पर संलिप्त हो जाता हैं। निर्मलावस्था में यह जीव शुद्ध बुद्ध और मुक्त है। विषयों के चिन्तन से यह मलावरित होता है जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य जी ने इस तथ्य को कहा है - 'अनादिमाया परियुक्त रूपं' वह अनादि माया से आसक्त होकर देह धारण

करता है। इस जीव की मूल स्वरूप में मुक्त, विषयाकार होने पर बद्ध व "मुक्तश्च बद्धं किल बद्ध मुक्तं" जन्म के समय बद्ध और फिर भक्ति साधनारत होने से प्रभु कृपा पूर्वक मुक्त अवस्था कहीं है। इस श्लोक से भगवान श्री हंस यही कह रहें हैं। मुझ से ही शक्ति सम्पन्न जीव विषयों का चिन्तन करते-करते विषयाकार हो जाता हैं। जीवन धारण करके भोक्ता बनता है अनासक्ति पूर्वक धर्म धारणा कर मुझे भजता हुआ, मुझे श्री कृष्ण को ही प्राप्त करता है ओर क्लेश से मुक्त हो जाता है।

गुणेषु चाविशच्चित्तमभीक्ष्णं गुण सेवया।
गुणाश्च चित्तप्रभवा मद्रूप उभयं त्यजेत्।। २६।।

जो पूर्व में भी कहा जा रहा है उसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुये भगवान श्री कृष्ण कहते हैं। धारणा से चित्त में विषय प्रविष्ट और लिप्त हो जाते है। इसलिए जीव परमस्वरूप को नहीं पहचान पाता। विषयों की प्रवाहवान आसक्ति से ही यह जीव बंधन का अनुभव करता है। और मैं (श्री कृष्ण) भी जीव की अवधारणा के अनुसार ही उसे परिणाम प्रदान करता हूँ। इस तरह इन दोनों ही स्थिति में मैं (श्री कृष्ण) सदा विद्यमान हूँ और विषय प्रवाह से निर्लिप्त बना रहता हूँ जो जैसा होता है वैसा परिणाम प्रदान करता हूँ। जो मुझे चाहता हैं उसे समस्त कर्मों को मुझे अर्पित करते हुये अनन्य भाव से मेरा स्मरण चिन्तन करना चाहिये। इस निरन्तर निस्काम धारणा से जीव मुझ श्री कृष्ण का पा लेता है।

भगवान भावना से प्राप्त होते हैं। और भावना आस्था से उत्पन्न होती हैं। और आस्था चित्त की धारणा से प्रवाहित हैं शनैः शनैः भगवद् भावना से चित्त, विषय धारणा से मुक्त हो जाता हैं और चित्त के विषय मुक्त होते ही भावुक भक्त को भगवान का प्रत्यक्षीकरण हो जाता हैं।

जाग्रत स्वप्नः सुषुप्त च गुणतो बुद्धिवृत्तयः।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन विनिश्चितः।। २७।।

जीवन प्रवाह में अनुवर्तन करने वाले जीव की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्त यह तीन आस्था हैं। यह सत्त्व रज तम गुण के अनुरूप बुद्धि की वृतियां हैं। जैसे पहले बता दिया-यह विषयाकार चित्त की अवस्थायें है - विषयाकार होकर, विषयों को भोगने वाले, आसक्त जीव की जगत में 'जाग्रत' अवस्था है। विषय प्रवृति से जगत के

संकल्प विकल्प करने वाले जीव की, विषय महत्वाकांक्षी 'स्वप्न' अवस्था हैं। प्रभु अनुरक्त निष्काम जीव की, विषय प्रवाह से शान्त, 'सुषिप्त' अवस्था हैं। इन अवस्थाओं के भी स्तर भेद हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय व आनन्दमय कोष इन सभी कोष में प्रकरणानुसार उक्त तीनों अवस्थायें विद्यमान हैं। 'सुषुप्ति' शान्त चित्त की अन्तिम परिणित है। शान्त चित्त में प्रभु अनुराग हो तो यह आनन्दमय अवस्था होती है। आनन्द, रस ज्ञान सत्य व परम यह सब परमेश्वर के वाचक है आनन्द से ओत-प्रोत हो जाना ही ज्ञान सत्य परम रसानन्द अवस्था है। इस आनन्दमय अवस्था में ही वृदावन धाम के नित्य निकुञ्ज में आनन्द मनोहर श्री श्यामा-श्याम बिहारी का दर्शन व सेवा सुख प्राप्त होता है।

यर्हि संसृतिबन्धोऽयमात्मनो गुणवृत्तिदः।
मयितुर्ये स्थितो जह्यात् त्यागस्तद् गुण चेतसाम्।।२८।।

यह बुद्धि की वृतियाँ ही इस जीवात्मा के बन्धन का कारण हैं। जाग्रत स्वप्न, सुषप्ति बुद्धिवृत्ति की अवस्थायें पूर्व में ही गई। ऐसे ही 'विश्व', 'तेजस' और 'प्राज्ञ' में जगत विषय का समिश्रण हैं। किन्तु 'तुरीय' निर्मल चित्त स्थित है। चित्त की विषय शान्त रसेश्वर अनुरंजन पूर्ण 'तुरीय' व केवल्य अवस्था है। विश्व तेज, प्राज्ञ इन तीनों अवस्था में उपासक सारे लौकिक व उपासना कर्म परमेश्वर श्री कृष्ण को समर्पित करे तब उसके बंधन का परित्याग होता हैं। जब जीवन में विषयों से सर्वथा आसक्ति व निर्भरता छूट जाती है तब युगपत त्याग कहलाता है। इस अवस्था मेंभावुक को तुरीय प्रज्ञा से केवल्य भाव में युगल प्रभु के नित्य निकुञ्ज में अविछन्न दर्शनानन्द की प्राप्ति होती है। अतः यहाँ कहा है कि यह बुद्धि की गुण विषयी वृत्ति ही जीव के बन्धन का कारण हैं इन विषय वृतियों को त्यागकर केवल्य अवस्था को प्राप्त करे जो जीव का विलक्षण स्वरूप है।

अहंकारकृतं बन्धमात्मनोऽर्थविपर्ययम्।
विद्वान् निर्विद्य संसारचिन्तां तुर्ये स्थितस्त्यजेत्।।२९।।

इन विषयों से आसक्ति के कारण जीव की अपने वास्तविक स्वरूप से विपरित बुद्धि हो जाती हैं। विषयासक्त जीव जगत पदार्थों में ही अपना सुख देखने लगता है। जबकि यथार्थतः यह सुख कर नहीं है। जगत विषया भोग को ही सुख कर मानने वाली विपरित बुद्धि अविद्या कही गई है। इस अविद्या बुद्धि से काम-क्रोध-मद-मोह, अहंकारादि विकारों का आवेश होता है जो जीवात्मा के वास्तविक

स्वरूप का आवरण और जीवात्मा को जन्म मृत्यु बंधन में डालने वाला हैं। जगत क्लेशो से बांधने वाला है। यह अविद्या ही जीव के बोधोपलब्धी की बाधा है। श्री राधा सर्वेश्वर की परम प्रेम भक्ति का अवरोध है। अतः विद्वान भक्त साधक विपरियय बुद्धि के यथार्थ को समझ कर संसारिक चिन्ता व चिन्तन को छोड़ दें और शान्त चित्त हो वृदावन धामस्थ आनन्द मनोहर श्री राधा माधव का ध्यान करें।

यावन्नानार्थधीः पुंसो न निवर्तेत युक्तिभिः।
जागर्त्यपि स्वपन्नज्ञः स्वप्नेजागरणं यथा।।३०।।

जब तक विषयों से आसक्ति नहीं छूटती तब तक विद्या व शास्त्र का ज्ञाता हो जाने से भी विद्वान सर्वथा निवृति को प्राप्त नहीं होता। जगत आसक्ति ही अविद्या है। आसक्ति के रहते हुए नाना प्रकार की सांसारिक युक्तियों से संसार ही साधा जाता हैं निवृति बिना परमार्थ वृत्ति के नहीं हो पाती। संसारिक युक्ति सम्पन्न तों जागते हुए भी सोये हुए द्वारा देखे जाने वाले स्वप्न के समान कल्पनाशील ही हैं। और कल्पनाशील को परमबोध नही होता।

असत्त्वादात्मनोऽन्येषां भावानां तत्कृता भिदा।
गतयो हेतवश्चास्य मृषा स्वप्नदृशो यथा।।३१।।

भगवद्भक्तियुक्त सत्व सम्पन्न बुद्धि ही आत्म बुद्धि हैं विद्या बुद्धि है। आत्मा स्वभावतः निर्मल है। आत्म-बुद्धि प्रेरित व्यवहार के अतिरिक्त अन्य सब भावनायें व कृत्य भ्रमित करने वाले हैं। परम धर्म परमार्थ से विपरित व्यवहार तों मिथ्या अवलम्बन ही है। अर्थात् असत्व सम्पन्न आसक्ति कर्म तो जगत में प्रवृत करने वाले, भक्ति के बाधक है, भ्रामक है। जैसे स्वप्न में देखे पदार्थ यथार्थ से साक्षात्कार नहीं कराते वैसे ही यह जगत के आसक्त प्रपञ्च प्रभु श्री राधामाधव का प्रत्यक्षीकरण नहीं करा सकते व धर्म भक्ति में भ्रांति उत्पन्न करते है।

यो जागरे बीहरनुक्षणघर्मिणोऽर्थान्भुङ्क्ते समस्त करणैर्हृदि तत्सदृक्षान्।
स्वप्ने सुषुप्त उपसंहरते स एकः स्मृत्यन्वयात्त्रिगुणवृत्ति दृगिन्द्रियेशः।।३२।।

प्रतिष्ठित आत्मा की शक्ति से प्राण कला द्वारा जाग्रत अवस्था में इन्द्रिय बहिरंग जगत को देखती है तथा बुद्धि वृति अनुभव करती है व काया भोगती है। मनः कल्पना ही स्वप्न है। इस अन्तःकरण की कल्पना शीलता से निवृति होने पर सुषुप्ति अवस्था प्राप्त होती है। परम प्रभु त्रिगुण मय जगत की समस्त प्रवृतियों के शक्ति-संचालक व

स्वामी होते हुए भी जगत प्रभाव से परे-दूर हैं। विवेक सम्पन्न अनासक्त, प्रभु भावापन्नअनन्य श्रद्धा से सर्वत्र प्रभु की ही सत्ता को देखते है। और अत्यन्त अनुराग से उन परम प्रभु राधा माधव का साक्षात्कार करते हैं। जो तुरीय में स्थित है और सुषुप्ति में अनुभव किया जाता है। जिसकी शक्ति से जीव स्वप्न में कल्पनाशील और जाग्रत में क्रिया प्रवृत्त होता हैं। वह परम प्रभु एक ही हैं और विविध रूपों में अमित प्रभाव व दिव्य स्वरूप वाला है।

एवं विमृश्यगुणतो मनसस्त्र्यवस्था मन्माययामयिकृता इति निश्चितार्थाः।
संछिद्य हार्दमनुमानसदुक्तितीक्ष्ण ज्ञानासिना भजत माखिलसंशयाधिम्।।३३।।

भगवान श्री हंस कह रहे है – यह तीनों जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति जीव के मनः संकल्प की अवस्थायें है। यह तीनों अवस्था जगत प्रभाव के अन्तर्गत ही हैं और यह जगत मेरी माया हैं। आत्मरूप से जगत में प्रतिष्ठित होकर भी मैं इन सब माया प्रवृतियों से निर्लिप्त हूँ और निर्लिप्त रहता हुआ ही सबको यथायोग्य परिणाम प्रदान करता हूँ। अतः विवेक से यह समझ लेना चाहिय कि आत्मा के यह विभिन्न अवस्था स्वरूप नहीं हैं। आत्मा सर्वथा निर्मल व दिव्य स्वरूप हैं। अतः विवेक सम्पन्न महात्माओं से शास्त्र वचन श्रवण कर, दीक्षा-शिक्षा-संस्कार लेकर सत्व सम्पन्न, भक्ति भाव भूमि पर आसीन होकर इस माया मलावरण का उच्छेदन कर दें। सब संशय की निवृति कर श्री हरिनाम जप रूप तीक्ष्ण खड्ग से लक्ष्य साधकर अनन्य भावापन्न हो मुझ परमात्मा परम प्रभु को तुरीय धाम नित्य निकुञ्ज में प्राप्त करलें।

ईक्षेत विभ्रममिदं मनसो विलासं दृष्टं विनष्टमतिलोलमलात चक्रम्।
विज्ञान मेकमुरुधेव विभाति माया स्वप्नस्त्रिधा गुणविसर्गकृतो विकल्पः।।३४।।

जगत में यह जीवन मन का विलास मात्र हैं। देखने में भी यह बनने व नष्ट होने वाला हैं। आलात चक्र के समान आवृति प्रवृति करने वाला हैं, भ्रमण करने वाला हैं। भगवान श्री कृष्ण कहते हैं, कि यह जगत मेरी माया से प्रकाशित हैं व मेरे सनातन नियम से प्रतिबन्धित व नियंत्रित है। स्वप्नादि तीन प्रकार के गुण विसर्ग में संकल्प-विकल्प करने वाला हैं।

दृष्टिं ततः प्रतिनिवर्त्य निवृत्ततृष्णस्तूष्णीं भवेन्निजसुखानुभवो निरीहः।
संदृश्यते क्व च यदीदमवस्तुबुद्धया त्यक्तं भ्रमाय न भवेत् स्मृतिरानिपातात्।।३५

अतः जो यह देखने में आने वाला जगत हैं उससे **तृष्णादि रहित होकर दैन्यता पूर्वक आत्मभाव से भगवद् भक्ति रूप अपने निज सुख में निमग्न रहें**। परम प्रभु श्री

राधा-माधव सर्वेश्वर की भक्ति करने वालों को भी आहार-विहार आदि करने पड़ते है। किन्तु भक्त प्रभु शरणागति लेकर कर्मासक्ति को स्थाई रूप से त्याग देते है। अतः प्रभु भावापन्न के कर्म मोहासक्त न हाने से भ्रान्ति मूलक नहीं है वरन भक्तों के देहादिक कर्म भक्ति साधना के सहयोगी ही होते है।

देहं च नश्वरमवस्थितमुत्थि तं वा सिद्धो न पश्चति यतोऽध्यगमत् स्वरूपम्।
दैवादपेतमुत दैववशादुपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः।।३६।।

निर्मल चित्त परम भक्त प्रपन्नता पूर्वक प्रभु शरणापन्न हो जाता है उसके कर्म प्रारब्धवसात व प्रभु सेवा भक्ति के कारण ही है। परम भक्त को प्रारब्धवसात दैहिक भौतिक व दैविक कष्ट हो सकते है। जिन्हें वह सहिष्णुता पूर्वक सहन करता है और इस कष्ट में भी वह प्रभु के विधान को हेतुक मानता हुआ परम भाव से विचलित नहीं होता। भक्त उपासक, उठता-बैठता, चलता-फिरता और खाता पीता है, प्रभु के सेवा कर्म भी करता है, किन्तु उसके यह सभी कर्म अनासक्ति पूर्वक प्रभुभावापन्न होने से प्रभुमय ही है। अहं, मोह, तृष्णा से विरत हुआ प्रपन्न परम दैन्यता से प्रभु का स्मरण करता हुआ जैसे मदिर पीया हुआ शरीर के वस्त्र आदि और बोलचाल का सम्यक बोध नहीं रखपाता है वैसे ही अनन्य प्रेमी, प्रभु के भाव में उन्मत्त रहता है व अत्यन्तावस्था में दैहिक क्रिया कलाप की शुधबुध भी नहीं रख पाता है और कई बार भावावस्था में बाह्यज्ञान शून्य भी हो जाता है। यह ही रसिक जनों को परम प्रेम गति है।

देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्
स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एवं सासुः।
तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः
स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ।।३७।।

जब तक जन्म के साथ आरम्भ हुए कर्मो का वेग शान्त नहीं होगा तब तक भक्त साधक लौकिक जीवन जीता है साथ ही परम प्रभु की के भावापन्न होकर भक्ति साधन करता रहता है। मन-वचन-कर्म में प्रपञ्च सामहित नहीं करता जगत के क्लेश-व्यवसाय में अहंता नही करता जैसे जागा हुआ पुरुष स्वप्नावस्था के शरीर को अपना नहीं मानता वैसे सब कुछ प्रभु का विधान मानकर परम शरणापन्न जीवन जीता है।

मयैतदुक्तं वो विप्रा गुह्यं यत सांख्या योगयोः।
जानीत माऽऽगतं यज्ञं युष्मद्धर्मविवक्षया।।३८।।

भगवान श्री कृष्ण कहते है-मेरे द्वारा जो यह सांख्य और योग सहित सभी प्रणाली की उपासना सरणी में निहित परम श्रेष्ठ प्रभु भक्ति कही गई यह परम गोपनीय और रहस्यमयी है। भगवान ने यहाँ सांख्य व योग का विशेष उल्लेख सम्भवतः इसलिए किया है कि परम ऋषि कुमारो का सांख्य व योग का ही अधिक अभ्यास था और मधुर भावानुरूप साकार स्वरूप की उन्हें दीक्षा-शिक्षा नही थी और वे केवल ध्यान से तुष्ट नही थे। अतः प्रभु ने परम दिव्य लीला स्वरूप की भाव संबंध से उपासना भक्ति का संकेत दिया। उपासना की किसी भी विधि से प्रभु से भाव संबंध करने पर ही प्रभु के मधुर स्वरूप का साक्षात्कार होता है। रसानन्द, परमानन्द और सुखानन्द की प्राप्ति होती है। परम प्रभु की भाव सबंधं से भक्ति किये बिना रसानन्द की अनुभूति नहीं होती। गोपियो की तरह परम शरणापन्न होने पर भगवान श्री राधा सर्वेश्वर की उज्जवल मधुर भक्ति प्राप्त होती है। यह सभी प्रणाली की साधना सरणी में सम्भव है। आवश्यकता है तो केवल परम प्रेम निष्ठा की। इस तथ्य को पुष्ट करते हुए भगवान हंस स्वरूप में श्री कृष्ण कहते है – मैं स्वयं ही भगवान हूँ तुम लोगों को उपदेश करने के लिए ही यहाँ आया हूँ। अतः तुम से मैने जो कुछ कहा, उसमें मैं स्वयं ही अन्तर्निहित हूँ। अतः आत्मतुष्टि के लिए परम प्रेम से भाव संबंध बनाकर मेरी भक्ति करो।

अहं योगस्य सांख्यस्य सत्यस्यर्तस्य तेजसः।
परायणं द्विजश्रेष्ठाः श्रियः कीर्तेदमस्य च।।३९।।

मैं जो स्वरूपतः तुम्हारे सामने उपस्थित हुआ हूँ। वही **मैं योग, सांख्य, सत्य, ऋत, तेज, श्री कीर्ती और दम इन सब की परम गति हूँ परम अधिष्ठान हूँ अतः मेरे लीलास्वरूप में व सांख्य योग ज्ञान के ध्येय में अन्तर मत मानो और मेरे कृपा पूर्ण लीला स्वरूप को सत्य समझो। द्विज श्रेष्ठ, शमदम आदि मनोनिग्रह पूर्वक सबका प्राप्त्यार्थ मैं ही हूँ।**

मां भजन्ति गुणाः सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सहृदं प्रियमात्मानं साम्यासंगड्ङादयोऽगुणाः।। ४०।।

उत्पत्ति स्थिति और लय का आधिष्ठाता और सबका सामर्थ्य होने के कारण सबका आत्मा सुहृद और प्रिय हूँ प्रकृति के सब गुणों का सामर्थ्य होकर भी संसर्गिक गुण दोष से रहित और विलक्षण हूँ निर्गुण अर्थात समस्त गुण दोष से रहित सर्वसमर्थ निरपेक्ष हूँ। और समस्त आत्मीय गुणों से पूर्ण हूँ।

"नान्यगति कृष्णपदारविन्दात्" "भक्तेच्छयो प्राप्त सुचित्य विग्रह" (३)"स्वभावतो अपास्तसमस्त दोषमऽशेष कल्याणगुणेकराशिम्।" "ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणम् हरिम्" (४) ऐसा श्री निम्बार्काचार्य भगवान ने श्री हरि का स्वरुप महात्म्य कहा है।

इती में छिन्नसन्देहा मुनयः सनकादयः

सभाजयित्वा परया भक्त्यागृणतसंस्तवैः।।४१।।

तैरहंपूजितः सम्यक्संस्तुतः परमर्षिभिः

प्रत्येयाय स्वकंधाम पश्यतः परमेष्ठिनः।।४२।।

भगवान श्री कृष्ण उद्धव से कहते है - इस तरह मैंने सनकादिक कुमारों का संशय दूर किया। सनकादिकों को योग की सूक्ष्म एकान्तिक और अन्तिम गति जानने की जिज्ञासा थी। उनके सामने समस्या उपस्थिति हुई थी चित्त और विषय परस्पर एकाकार हो रहें। ऐसी स्थिति में मन चंचल हो जाता है। चंचल मन से परमगति नहीं मिलती अतः चित्त निरोध कैसे हो विषय व चित्त को अलग-अलग कैसे किया जावें? इसका समाधान चाहते थे। उनको यह भी शंसय था कि भगवान निर्गुण निराकार स्वरूप में सर्वव्याप्त आत्मशक्तिरूप अद्वैत हैं उनका लीला स्वरूप नही होता और वे समाधि में ही दर्शनीय है। जीवन लीला स्वरुप में व प्रकृतिस्थ पृथक महत्व व परमात्मा की सर्वांगीण तथा निर्लिप्त प्रभा को वे नहीं समझ पा रहे थे। सर्वान्तरयामी हंस भगवान ने यह बता दिया कि "स्वभावतः समस्त दोषों से रहित समस्त गुण गण महोदधि मैं हूँ ओर मैं विशुद्ध भक्ति से प्राप्त होता हूँ।" भक्ति के इस रहस्य से मुझ परमात्मा को यथार्थतः जानकर सनकादिक कुमारों ने परम भाव से मेरी पूजा की और स्तुतियों द्वारा मेरा महिमा गान किया। जब परमऋषियों ने भलि प्रकार से पूजा और स्तुति कर ली तब मैं ब्रह्मा के सामने से अदृश्य होकर अपने धाम गौ लोक नित्य निकुञ्ज को लौट आया। इस तरह श्री सनकादि कुमार, श्री हंस स्वरूप में श्री कृष्ण द्वारा परम भक्ति प्राप्त करके परम तृप्त होकर अत्यन्त उत्कण्ठा पूर्वक निरन्तर रसेश्वर सर्वेश्वर श्री कृष्ण का स्मरण चिन्तन व स्वाध्याय करते हुए भक्ति में संलग्न हो गये और जन कल्याणार्थ वैष्णव दीक्षा का प्रसार करने लगे।

❑❑❑
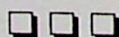
भूमा विद्या

परम ऋषि सन्त कुमार जी द्वारा देवर्षि नारद को उपदेश

छान्दोग्योपनिषत्

अथ सप्तमाध्यायस्य प्रथमः खण्डः ।।१ ।।

शान्ति पाठ

ॐ आप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक्प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि
च सर्वाणि। सर्वंब्रह्मौपनिषदं माहं, ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म
निराकरोदनिराकरणमस्त्व निराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते
य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सतु ते मयि सन्तु।।

ॐ शान्तिः। शान्ति।। शान्ति।।।

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन नोपसीद ततस्तऊर्ध्वं वक्ष्यामीति।।१ ।।

सहोवाच-ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।।२ ।।

सोऽहं भगवोमन्त्रविदेवास्मि नात्मविच्श्रुतं ह्येव मे भगवदृशेभ्यस्तरति शोकमात्मविदिति सोऽहं भगवः शोचामि तं मां भगवानञ्छोकस्य पारं तारयत्विति तं होवाच यद्वै-किञ्चैतदध्यगीष्ठा नामैवैतत्।।३।।

नाम वा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेद आथर्वणश्चतुर्थ इतिहासपुराणः पञ्चमो वेदानां वेदः पित्र्यो राशि र्दैवोनिधिर्वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्य ब्रह्मविद्या भूतविद्या क्षत्रविद्या नक्षत्रविद्याय सर्पदेवजनविद्याय नामैवैतन्नामोपास्वेति।।४।।

स यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्नाम्नो गतं तत्रास्य कामचारो भवति यो नाम ब्रह्मेत्युपास्ते ऽस्ति भगवो नाम्नो भूय इति वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।५।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य प्रथम खण्डः ।।१।।

वाग्वाव नाम्नो भूयसी वाग्वा ऋग्वेदं विज्ञापयति यजुर्वेदं सामवेदमर्थार्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं ँ राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्र विद्यां सर्पदेवजनविद्यां दिवञ्च पृथ्वीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च तेजश्च देवाँश्च मनुष्याँश्च पशूँश्च वयाँसि च तृणवनस्पतीञ्छ्वा-पदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मश्चाधर्मश्च सत्यञ्चानृतं च साधुचासाधु च हृदयज्ञञ्चाहृदयज्ञञ्च यद्वै वाङ्नाभ-विष्यन्न धर्मो नाधर्मो व्यज्ञापयिष्यन्नसत्यं नानृतं नसाधु नासाधु नहृदयज्ञो वागेवैतत्सर्व विज्ञापयति वाचमुपास्स्वेति।।१।।

स यो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्वाचोगतं तत्रास्य यथाकाम चारो भवति यतो वाचं ब्रह्मे त्युपास्तेऽस्ति भगवो वाचो भूय इति वाचो वा व भूयोस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीय खण्डः ।।२।।

मनो वाव वाचोभूयो यथा वै द्वैवाऽऽमलके द्वेवा कोले द्वौ वाक्षौ मुष्टिरनुभवत्येवं वाचञ्च नाम च मनोऽनुभवति स यदा मनसा मनस्यति मन्त्रानधीयीयेत्यथाधीते कर्माणि कुर्वीतेत्यथ कुरुते पुत्राँश्च पशूँश्चेच्छेयेत्यथेच्छत इमुं च लोकममुंचे च्छेयेत्यथेच्छते मनोह्यात्मा मनो हि लोको मनोहि ब्रह्म मन उपास्स्वेति।।१।।

स या मनो ब्रह्मेत्युपास्ते यावन्मनसोगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो मनो ब्रह्मेत्युपास्ते अस्ति भगवोमनसो भूय इति मनसो वावभूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य तृतीय खण्डः ।।३।।

सङ्कल्पो वा व मनसो भूतान्यदा वै सङ्कल्पयतेऽथ मनस्यथ वाचमीरयति तामु नाम्नीरयति नाम्नी मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।।

तानि ह वा एतानि सङ्कल्पैकायनानि सङ्कल्पात्मकानि सङ्कल्पे प्रतिष्ठितानि समक्लृपतां द्यावापृथिवी समकल्पेतां वायुश्चकाशञ्च समकल्पन्तामापश्च तेजश्च तेषांः संक्लृत्यै वर्षः सङ्कल्यते वर्षस्य संक्लृप्त्या अन्नः सङ्कल्पयतेऽन्नस्य संक्लृप्त्यै प्राणाः सङ्कल्पन्ते प्राणानां सङ्क्लृप्त्यै मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणां संक्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कलृप्त्ये मन्त्राः सङ्कल्पन्ते मन्त्राणां संक्लृप्त्यै कर्माणि सङ्कल्पन्ते कर्मणा संक्लृप्त्यै लोकः सङ्कल्पन्ते लोकस्य सङ्क्लृल्प्त्यै सर्व सङ्कल्पते स एष सङ्कल्पः सङ्कल्पमुपास्स्वेति।।२।।

स यः सङ्कल्पं ब्रह्मेत्युपास्ते क्लृप्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्ठितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानऽव्यथमानोऽभि सिद्धयति यावत्सङ्कल्पस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यः सङ्कल्पं बह्मोत्युपात्तेऽस्ति भगवः सङ्कल्पाद्भूय इति सङ्कल्पाद्वा व भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीति।।३।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्थ खण्डः ।।४।।

चित्तं वाव सङ्कल्पाद् भूयो यदा वै चेतयतेऽथसङ्ककल्पयतेऽथ मनस्यत्यथ वाचमीरियति तामु नाम्नीरयति नाम्नि मन्त्रा एकं भवन्ति मन्त्रेषु कर्माणि।।१।।

तानि ह वा एतानि। चित्तैकायनानि चित्तात्मनि चिते प्रतिष्ठितानि तस्माद्यद्यपि बहुविदचितो भवति नायमस्तीत्येवैनमाहुर्यदयं वेद यद्वा अयं विद्वान्नेत्थमचित्तः स्यादित्यथ यद्यल्पविच्चित्तवान् भवति तस्माएवोत शुश्रूषन्ते। चित्तंः ह्यैन्ते वे-षामेकायनंचित्तात्मा चित्तं प्रतिष्ठा चित्तमुपास्स्वेति।।२।।

स यश्चित्तं ब्रह्मेत्युपास्ते चित्तान्वै स लोकान् ध्रुवान् ध्रुवः प्रतिष्टितान् प्रतिष्ठितोऽव्यथमानानव्यथमानोऽभिसिद्धयृति यावचिवत्तस्य गतं तत्रोस्य यथा कामचारो भवति यश्चितं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवश्चित्ताद्भूय इति चित्ताद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्त्विति।।३।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य पंचम खण्डः ।।५।।

ध्यानं वा व चित्ताद्भूयोध्यायतीव पृथिवी ध्यायतीवान्तरीक्षं ध्यायतीव द्यौर्ध्यायन्तीवाऽऽपोध्यायन्तीव पर्वताध्यन्तीव देवमनुष्यास्तस्माद्य इह मनुष्यणां महत्तां प्राप्नुवन्ति ध्यानां पादाःशा इवैव ते भवन्त्यथ येऽल्पाः कलहिनः पिशुना उपवादिनस्तेऽथ ये प्रभवो ध्यानापादाःशा इवैव ते भवन्ति ध्यानमुपास्स्वेति।।१।।

स यो ध्यानं ब्रह्मेत्युपास्ते यावद्धानस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति योऽध्यानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो ध्यानाद्भूय इति ध्यानाद्वावभूयोस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्त्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य षष्ठः खण्डः ।।६ ।।

विज्ञानंवावध्यानाद्भूयो विज्ञानेन वा ऋग्वेदं विजानाति यजुर्वेदं॰ सामवेदामाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं॰ राशि दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां॰ सर्पदेवजनविद्यां दिवश्च पृथ्वीञ्च वायुञ्चाकाशञ्चापश्च मनुष्यांश्च पशूंश्च वयांसि च तृणवनस्यती ञ्छापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं धर्मञ्चाधर्मञ्च सत्यञ्चानृतञ्च साधु चासाधु चहृदयज्ञ चाहृदयज्ञं चान्नञ्च रसञ्चेमच्च लोकम् मंच विज्ञानेनैव विजानाति विज्ञानमुपास्स्वेति ।।१ ।।

स यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्ते विज्ञानवतो वै सलोका ञ्ज्ञानवतोऽभिसिद्धयति यावद्विज्ञानस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यो विज्ञानं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो विज्ञानाद्भूय इति विज्ञानाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवानब्र वीत्विति ।।२ ।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य सप्तमः खण्डः ।।७ ।।

बलं वाव विज्ञानाद्‌भूयोऽपि ह शतं विज्ञानवतामेकोबलवानाकम्पयते स यदा बलीभवत्यथोत्थाता भवित्युतिष्ठन् परिचरिता भवति परिचरन्नुपसत्ता भवत्युपसीदन् द्रष्ट भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवति क्लेन वै पृथिवी तिष्ठति बलेनान्तरिक्षं बलेन द्यौर्बलेन पर्वता बलेन देवमनुष्या बलेन पशवश्च वयांसि चतृणावनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकं बलेन लोकस्तिष्ठति बलमुपास्स्वेति ।।१ ।।

स यो बलं ब्रह्मत्युपास्ते यावद्बलस्य गतं तत्रास्य यथाकामचारो भवति यो बलं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवो बलाद्भूय इति बलाद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२ ।।

।। इति सप्तमाध्यायस्याष्टमः खण्डः ।।८ ।।

अन्नं वाव बलाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि दशरात्रीन्नाश्नीयाद्यद्युह जीवेदथवाऽद्रष्टाऽश्रोताऽमन्ताऽबोद्धाऽविज्ञाता भवत्य थान्नस्यायै द्रष्टा भवति श्रोता भवति मन्ता भवति बोद्धा भवति कर्त्ता भवति विज्ञाता भवत्यन्नमुपास्स्वेति ।।१ ।।

स योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽन्नवतो वै स लोकान्यानवतोऽभिसिद्धयति यावदन्नस्य गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति योऽन्नं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽन्नाद्भूय इत्यन्नाद्वा व भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति ।।२ ।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य नवमः खण्डः ।।६ ।।

आपो वावान्नाद्भूयस्तस्माद्यदा सुवृष्टिर्न भवति व्याधीयन्ते प्राणा अन्नं कनीयोभविष्यतीत्यथ यदा सुवृष्टिर्भवत्यानन्दिनः प्राणा भवंत्यन्नं बहुभविष्यतीत्याप एवेमामूर्ता ये यं पृथिवी यदन्तरिक्षं यद्द्यौर्यत्पर्वता यद्देव मनुष्या यत्पशवश्च वयांसि च तृणवनस्पतयः श्वापदान्याकीटपतङ्गपिपीलकमाप एवेमामूर्ता अप उपास्स्वेति।।१।।

स योऽपो ब्रह्मेत्युपास्त आप्नोति सर्वान् कामास्तृप्तिमान् भवति यावदपां गतं तत्रास्य कामचारो भवति योऽपोब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवोऽद्भ्योभूप इत्यद्भयो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवीत्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य दशमः खण्डः।।१०।।

तेजो वावाद्भ्यो भूयस्तद्वा एतद्वायुमागृह्याऽऽकाशमभितपति तदाहुर्निशोचति नितपति वर्षिस्यति वा इति तेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तदेतदूर्ध्वाभिश्च तिरश्चीभिश्च विद्युद्भिराह्लादाश्चरन्ति तस्यादाहुर्विद्योतते स्तनयति वर्षिष्यति वा इतितेज एव तत्पूर्वं दर्शयित्वाऽथापः सृजते तेज उपास्स्वेति।।१।।

स यस्तेजो ब्रह्मेत्युपास्ते तेजस्वी वै स तेजस्वतो लोकान् भास्वतोऽपहततमस्कानभिसिद्ध्यति यावत्तेजसोगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति यस्तेजोब्रह्मेत्युपास्ते भगवस्तेजसो भूय इति तेजसो वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान्ब्रवित्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्यैकादशः खण्डः।।११।।

आकाशो वाव तेजसोभूयानाकाशे वै सूर्याचन्द्रमसावुभौ विद्युन्नक्षत्राण्यग्निराकाशेनाऽऽह्वयत्याकाशेन शृणोत्याकाशेन प्रतिश्रृणोत्याकाशेरमत आकाशे न रमत आकाशे जायत आकाशमभिजायत आकाशमुपास्स्वेति।।१।।

स य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्ते आकाशवतो वै स लोकान्प्रकाशवतोऽसंबान्धानुरूगायवतोऽभिसिद्धयति यावदाकाशस्यगतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आकाशं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आकाशाद्भूय इत्याकाशाद्वाव भूयोस्तीति तन्मे भगवान ब्रवीत्विति।।२।।

।। इति सप्ताध्यायस्य द्वादशः खण्डः।।१२।।

स्मरो वावा काशाद्भूयस्तस्माद्यद्यपि बहव आसीरन्नस्मरन्तो नैप बते कश्चन श्रृणुयुर्नमन्वीरन्नविजानीरन्यदा वाव ते स्मरेयुरथश्रृणुयुरथमन्वीरन्नथ विजानीरन्स्मरेण वै पुत्रान्विजानाति स्मरेण पशून्स्मरमुपास्स्वेति।।१।।

स यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्ते यावत्स्मरस्य गतं तत्रास्य यथा कामाचारो भवति यः स्मरं ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगवः स्मराद्भूय इति स्मराद्वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोदशः खण्डः ।।१३।।

आशा वा व स्मराद्भूयस्याशेद्धो वै स्मरो मन्त्रानधीते कर्माणि कुरूते पुत्रांश्च पशूंश्चेच्छत इमञ्च लोकममुञ्चेच्छत आशामुपास्स्वेति।।१।।

स य आशां ब्रह्मेत्युपास्त आशायाऽस्य सर्वे कामाः समृद्ध्यन्त्युमोघा हास्याशिषो भवन्ति यावदाशाया गतं तत्रास्य यथा कामचारो भवति य आशां ब्रह्मेत्युपास्तेऽस्ति भगव आशाया भूय इत्याशाया वाव भूयोऽस्तीति तन्मे भगवान् ब्रवीत्विति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्दशः खण्डः।।१३।।

प्राणो वा आशया भूयान् यथा वा ओरा नाभौ समर्पिता एवमस्मिन् प्राणे सर्वं समर्पितं। प्राणः प्राणेन याति प्राणः प्राणं ददाति प्राणाय ददाति। प्राणो पिता प्राणो माता प्राणो भ्राता प्राणः स्वसा प्राण आचार्य्यः प्राणो ब्राह्मणः।।१।।

स यदि पितरं वा मातरं वा भ्रातरं वा स्वसारं वाऽऽचार्य्यं वा ब्राह्मणं वा किञ्चिद्भृशमिव प्रत्याह धिक् त्वाऽस्त्वित्येवैनमाहुः पितृहा वै त्वमसि मातृहा वै त्वमसि भ्रातृहा वै त्वमसि स्वसृहा वै त्वमस्याचार्यहा वै त्वमसि ब्राह्मणहा वै त्वमसीति।।२।।

अथ यद्यप्येनानुत्क्रान्तप्राणच्छूलेन समासं व्यतिषं दहेन्नैवैनं ब्रू युः पितृहाऽसीति न मातृहासीति न भ्रातृहासीति न स्वसृहासीति नाचार्य्यहासीति न ब्राह्मणहासीति।।३।।

प्राणो ह्येवेतानि सर्वाणि भवति स वा एष एवं पश्यन्नैवं मन्वान एवं विजानन्नति वादी भवति तं चेद्ब्रूयुरतिवाद्यसीत्यतिवाद्यस्मीति ब्रुयान्नापह्नुवीत।।४।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चदशः खण्डः।।१५।।

एष तु वा अतिवदति यः सत्येनाति वदति सोऽहं भगवः सत्येनातिवदानीति सत्यन्त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति सत्यं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य षोडषः खण्डः।।१६।।

यदा वै विजानात्यथ सत्यं वदति नाविजानन्सत्यं वदति विजानन्नैव सत्यं वदति विज्ञान त्वेव विजिज्ञासितव्यमिति विज्ञानं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

।। इति सप्तमाध्ययायस्य सप्तदशः खण्डः ।।१७।।

यदा वै मनुतेऽथ विजानाति नामत्वा विजानाति मत्वैव विजानाति मतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। मतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

।। इति सप्तमाध्यायस्याष्टादशः खण्डः।।१८।।

यदा वै श्रद्दधात्यथ मनुते नाश्रद्दधन् मनुते श्रद्दधदेव मनुतेश्रद्धा त्वेव विजिज्ञा-सितव्यति श्रद्धां भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

इति सप्तमाध्यायस्यै कोनविंशः खण्डः।।१९।।

यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्धाति नानिस्तिष्ठञ्छ्रद्धधाति निस्तिष्ठन्नेव श्रद्धधाति निष्ठा त्वेव विजिज्ञासितव्येति, निष्ठां भगवो विजिज्ञास इति ।।१।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य विंशतमः खण्डः।।२०।।

यदा वै करोत्यथ निस्तिष्ठति नाकृत्वा निस्तिष्ठति कृत्वैव निम्तिष्ठति कृत्वैव निम्तिष्ठति कृतिस्त्वेव विजिज्ञासितव्येति। कृतिं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

।। इति सप्तमाध्यायस्यैकविंशः खण्ड ।।२१।।

यदा वै सुखं लभतेऽथकरोति नासुखं लब्धा सुखं करोति सुखमेव लब्धा करोति सुखंत्वेव विजिज्ञासितव्यमिति। सुखं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

इति सप्तमाध्यायस्य द्वाविंशः खण्डः ।।२२।।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमत्वेव विजिज्ञासितव्य इति।भूमानं भगवो विजिज्ञास इति।।१।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य त्रयोविंशः खण्डः।।२३।।

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथयत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं। स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।।१।।

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्य्य क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि

ब्रमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति ।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य चतुर्विंशः खण्डः ।।२४।।

स एवाधस्तात् स उपरिष्ठात्स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणातः स उत्तरतः स एवेद ँ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिण तोऽहमुत्तरतोऽहमेवेद ँ सर्वमिति ।।१ ।।

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं ँ सर्व मिति स वा एष एवंपश्यन्नैवंमन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामाचारो भवति। अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्तेक्षय्यलोका भवन्ति तेषां ँ सर्वेषु लोकेष्व कामचारो भवति।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य पञ्चविंशः खण्डः ।।२५।।

तस्य ह वा एतस्यैवं पश्यत एवं मन्वानस्यैवं विजानत आत्मतः प्राण आत्मत आशाऽऽत्मतः स्मर आत्मत आकाश आत्मतस्तेज आत्मत आप आत्मत आविर्भावतिरोभावात्मतोऽन्नमात्मतोबलमात्मतो विज्ञानमात्मतो ध्यानमात्मतश्चित मात्मतः सङ्कल्प आत्मतो मन आत्मतो वागात्मतो नामाऽऽत्मतो मन्त्रा आत्मतः कर्माण्यात्मत एवेद ँ सर्वमिति।।१।।

तदेष श्लोको भवति न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोतदुःखता ँ सर्वं ँ ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति। स एकधा भवति त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृतः शतञ्च दश चैकञ्च सहस्त्राणि च **विंशतिराहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः** सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसः पारं दर्शयति भगवान्सनत्कुमारस्तं स्कन्द इत्याचक्षते तं स्कन्द इत्याचक्षते।।२।।

।। इति सप्तमाध्यायस्य षड्विशंः खण्डः ।।२६।।

भूमा विद्या

परम ऋषि सनत् कुमार जी द्वारा देवर्षि नारद को उपदेश

छादोग्योपनिषद् अध्याय-सात

श्री "ओम अधीहि" आदि श्रुति वाक्यों से प्रारम्भ छादोग्योंपनिषद् के अध्याय सात में सनत् कुमार जी द्वारा उपदेशित विद्या का सारांश हम यहाँ (निम्बार्कीय भाव परम्परानुसार स्वमती से)प्रस्तुत कर रहे है-श्री नारद जी को पुण्य प्रभाव से समस्त प्रकार की विद्या का ज्ञान हो गया था लेकिन तुष्टि नहीं हुई थी- अत: वे इस आशा से कि मेरे इस अज्ञान का अन्त श्रीसनत् कुमार जी भगवद् विद्या देकर करेंगे। वे सनत् कुमार जी के पास आये और बोले-भगवान मैं आपके अनुगत हूँ। आपकी शरण में इस आशा से आया हूँ कि आप मेरे अवसाद को दूर करेंगे। अत: कृपया मेरा यह अज्ञान दूर करें। सनत्कुमार जी ने कहा - तुम अब तक अपने प्रयत्न से जो -जो उपलब्धि कर चुके हो वह हमें बता दो। उससे आगे ईश्वर की ओर ले जाने वाली उर्धरेता विद्या मैं बताऊँगा। नारद जी ने कहा - मैं चारों वेद, पुराण, व्याकरण, गणित, उत्पादशास्त्र, निधिशास्त्र तर्क व नीतिशास्त्र देव, ब्रह्मा, भूत, क्षत्र, नक्षत्र नृत्यसंगीत आदि विद्या जानता हूँ। मैं इन विद्याओं के मंत्रों को भी जानता हूँ। इन विद्याओं की जो आत्मशक्ति है उसको नही जानता, अत: खिन्न हूँ आपकी शरण हूँ अत: आप शोक से पार होने का मार्ग बताये।

भगवान सर्वेश्वर श्री कृष्ण ही सबकी आत्मा व परमात्मा है। वे ही साक्षात है, वे ही परमप्रभु अपने कलाकौशल से जगत का पालन व नियमन करते है। सर्व कलासम्पन्न परम पुरुष के लिए ही परमात्मा, रस, आनन्द व आत्मा शब्द का प्रयोग किया गया है। ''एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एसोऽन्तर्यामेष आत्मा'' आदि व ''यन्नामृत स पुरुषों'' ' यह अमृत सब की आत्मा व अविनासी है ''परात्परम् पुरुषमुपैति दिव्यम्'' परामार्ग से दिव्य पुरुष परमात्माको प्राप्त हो जाता है। ''ॐ आत्मा वा इदमेव एवाग्र आसीत'' पहले आत्मा ही था इस आत्मा की स्वैच्छा से यह जगत उत्पन्न हुआ। यह सोलह कलाओं से सम्पन्न रसेश्वर श्रीकृष्ण है। यही पुराधीष है। यह प्राज्ञ पुरुष लीला पुरुषोत्तम स्वयं परामूर्ति श्री राधा सहित वृन्दावन में प्रकट हुए। अत: यहाँ आत्मा शब्द सर्वेश्वर श्री राधा कृष्ण के लिए ही प्रयुक्त है। सनत् कुमार जी ने कहा ''तुम जो जानते हो यह तो इस दृष्टि दृष्टाजगत में नाम ही है। अर्थात भौतिक ज्ञान ही है। ''नामोपास्स्वेति'' तुम इस नामधारी जगत की उपासना करों। उपासना का अर्थ है परमात्म आस्थापूर्वक कर्म, सम्पादन करना। सनत्कुमार जी ने कहा - इन सब नाम संज्ञा में सर्वेश्वर की व्याप्ति मानते हुए आस्था पूर्वक धर्म का यथा तथ्य आचरण करों। इन दृश्य जगत का उपयोग धर्म व भक्ति साधन को समृद्ध करने में करो। धर्म पूर्वक भौतिक उन्नति के साथ भगवत् भक्ति करते हुए अध्यात्मिक उन्नति करो।

व्यष्टि-समष्टि स्वरूप नामधारी इस जगत में व्यक्ति (जीव) व वस्तुओं के अपने-अपने गुण स्वभाव, प्रकृति व क्षमतायें हैं। जीवन में पुरुषार्थ समृद्धि व परमात्म प्राप्ति के लिए देश, काल, परिस्थिति, प्रकृति स्वभाव व क्षमता के अनुसार इनका यथायोग्य सुचारु रूप से उपभोग करों।

इस नाम से बढकर वाक् है 'वाक् से ही यह विद्यायें, पञ्चमहाभूत, मनुस्यादि प्राणी, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य, साधु-असाधु, मनोज्ञ-अमनोज्ञ सब प्रकाशित होते है। क्योंकि 'ॐ' अक्षर पूर्वक इस वाक् से ही समस्त जगत की उत्पत्ति हुई है। वाणी से ही सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म का ज्ञान होता है साधु-असाधु की पहचान होती है। नाम संज्ञ व्यक्ति द्वारा वाणी से ही प्रभु का गुणानुवाद होता है।' अत: ''**वाचमुपास्स्वेति**'' सत्य वाणी व धर्मादि आचरण के साथ हरिनाम कीर्तन, कथा, गुरु मंत्र जप पूर्वक वाणी का संयम व प्रभु की भक्ति करो।

मन से ही यह समस्त जगत ग्रहण किया जाता है। मन के स्फूरण से ही मंत्र जप कर्म तथा प्रभु की भक्ति में लगन होती है। इस मन से ही अपरा जगत के प्रेयस कर्म व परामार्थ के श्रेय: कर्म तथा प्रभु भक्ति होती है। मन से ही यह मुट्ठी में बन्द दो आवलों की तरह यह दो मार्ग है। अत: वाणी से मन बढकर है। तुम सर्वेश्वर के श्रद्धावन्त होकर परागत श्रेयश मार्ग से इस मन द्वारा प्रभु उपासना करों। "**ब्रह्म मन उपास्स्वेति**" मन के स्फूरित विचार से ही वाणी आदि समस्त कर्म प्रेरित होते है। उसी से धर्म,कर्म व नाम जप के प्रति प्रवृति होती है। "**संकल्पमुपास्स्वेति**" मन से संकल्प की उपासना करो, साधना करो। जो दृढ़ संकल्प होता है वह अपने संकल्पित ईष्ट को प्राप्त कर लेता है।

संकल्प से चित्त श्रेष्ठ है। चित्त ही चेतना वाला व स्मृति से आवरित होता है, स्मृति से ही संकल्प, मनन व वाणी में प्रवृत्ति होती है। इन सभी प्रवृत्तियों का उद्‌गम व लय चित्त में है। चित्त की स्मृति प्रेरणा से ही बोध व विद्वता प्रकट होती है। चित्त ही प्रतिष्ठित आत्मा है। अत: चित्तात्मा ब्रह्म है '**यश्चिचित्तं ब्रह्मत्युपास्ते**' जो इस प्रकार उपासना करता है। वह स्वयं ध्रुव होरक शोकादि व्यथाओं से रहित लोकों में विचरण करता है। परम प्रभु श्री राधा कृष्ण का ध्यान ही चित्त से श्रेष्ठ है। पृथ्वी अंतरिक्ष पर्वत देव मनुष्य आदि प्राणी मानो अपने-अपने ध्येय का ध्यान करते हुये, अपने ध्येय में प्रवृत्त है। जो मनुष्य अपने ईष्ट ध्येय को प्राप्त करना चाहता है। वह पुर्वोक्त विधिपूर्वक अनन्य निष्ठा से ध्यान करता हुआ अपने आराध्य युगल किशोर की कृपा पा सकता है। "**ध्यानं मुपास्स्वेति**" अत: एकाग्रता पूर्वक अपने परम ईष्ट का ध्यान करो।

ध्यान से विज्ञान उत्कृष्ट है। ध्यान से उत्पन्न प्रज्ञा ही विज्ञान है। ध्यान की सिद्धि से उत्पन्न प्रज्ञा से ध्यान स्वत: स्थिर होने लगता है। इसे ही योगी कुण्डली जागरण कहते है। यह ही सिद्धियों का स्थल भी हैं। किन्तु वैष्णव भक्तों के लिए सिद्धी से चमत्कार का कोई लक्ष्य नहीं है। नाम जप सेवा संकीर्तन वैष्णवों का राजयोग हैं। वैष्णव को यह सिद्धियाँ भ्रमित नहीं करती न सताती है वरन यह ही प्रभु-कृपा से अनायास ही वैष्णव का योग क्षेम भी सम्पाद कर देती है।

प्रज्ञा सम्पन्न भक्त के सामने सारा ज्ञान विज्ञान स्वतः ही प्रत्यक्ष होने लगता है। भक्त इस सारे कौतुहल को छोड़कर परामार्ग से प्रभु प्रेम का ही अभिलाषी होता है। ज्ञान और विज्ञान के इन सभी लोकों में वह एकमात्र अपने युगल ईष्ट को ही देखता है। अतः "**विज्ञानमुपास्स्वेति**" इस विज्ञान से तुम राधमाधव की अनन्य भाव से उपासना करो।

जो धर्म का स्वभावतः आचरण करे, क्योंकि धर्म परमेश्वर का स्वभाव है "स्वभावतो अपास्थ समस्त दोषंऽशेष कल्याण गुणैक रश्मि"(५) जो सत्य, अहिंसा, शुचिता, परमेश्वर आस्था का बर्ताव करें परमेश्वर का नाम स्मरण करे, सतत् भगवद भावानुकूल व्यवहार करे उसे उत्कृष्ट भक्ति गति प्राप्त होती है।

इन्द्रियों की बहिःमुखता रूप विषय लालसा दूर होने पर आत्म स्वरूप श्री राधाकृष्ण में स्वाभाविक आकर्षण होने लगता है। स्मरण, चिन्तन, लीला श्रवण व दर्शन के प्रति उत्कृष्ट लालसा होने लगती है। तब यह आत्म रति वाली रसाल, उज्जवल रस, परम प्रेम, संख्य व माधुर्य भाव भक्ति कहलाती है। इस चेतन्य भक्ति के उत्तरोत्तर प्रगाढ़ होने से मलावरण क्षीण होने लगते है। ऐसी जीवात्मा पराश्रेय मार्ग की स्वाभाविक अनुगामिनि हो जाती है। यही माधुर्य सेवा भक्ति है। ज्यों-ज्यों आवरण क्षीण होते जाते हैं। भक्त प्रभु मूर्ति के दर्शन करके, कभी प्रभु सेवा की वस्तुओं को देखकर तो कभी भक्तों को देखकर कभी प्रभु कथा सुनते हुए कभी प्रभु लीला देखते हुए, कीर्तन करते हुए, तीर्थ स्थानों के दर्शन कर अनायास ही भावुक होने लगता है। कभी प्रभु का नाम सुनकर या स्मरण करके ही ध्यान मग्न हो जाता है। अनायास ही अन्तर्मुखी होकर ध्यानस्थ हो जाता है। इस तरह परा मार्ग पर आगे बढ़ते हुए भावुक की युगल सरकार में स्वाध्याय शील स्थिति हो जाती है।

चित्त का आवरण सर्वथा क्षीण होने से ज्ञान पुञ्ज श्री कृष्ण के स्वरूप का दिव्य दर्शन होने लगता है। जगत विज्ञान वैभूति सिद्धियों सहित सामने आती है। कई अलौकिक सामर्थ्य, आश्चर्य व कौतुहल भक्त के सामने प्रकट होने लगते है। भक्त प्रभु की एकमात्र भक्ति अभिलाषा से इन प्रलोभनों को त्याग देता है। इस स्थिति में कई विघ्न, प्रलोभन, भक्त को विचलित करने आते है। इन सब से श्रद्धावान भक्त विचलित नहीं होता है और कृष्ण उपासना में सतत् संलग्न रहता है। सहज और विनम्र

रहता है। ऐसे निर्मल चित्तात्मा को परा श्री राधा जी की सहज कृपा अनुभव होने लगती है। "अङ्गे तु वामें वृषभानुजा मुदां" (वे.दश श्लोकी) अत्यन्त कृपार्द्र होकर श्री राधा नित्य निकुञ्ज में श्री कृष्ण के लीला स्वरूप का रसानन्द प्रदान कराती हैं और सभी मनोरथ पूरे करती है।

उपासकों के अन्य अन्तरंग पहलुओं को सनत् कुमार देवर्षि नारद को इस तरह उपदिष्ट कर रहे है-इस विज्ञान से बल श्रेष्ठ है। क्योंकि यह पूर्व कथित उपासना साधन बल से ही सम्पन्न होता है। श्रवण, मनन, बोध व विज्ञान भी बल से ही होता हैं। शरीर का यह बल वीर्य, पृथ्वी में स्थिति है। क्योंकि प्राणी को खान-पान आदि से ही बल प्राप्त होता है। और यह अन्न पृथ्वी से प्राप्त होता है। यह प्राणी को खान-पान आदि से ही बल प्राप्त होता है। और यह अन्न पृथ्वी से प्राप्त होता है। अतः यह प्राणी का ध्येय साधन बल से ही साधित है। परमेश्वर के अमृत मय शुक्र बल से यह सारे लोक स्थिति हैं। यह बल दो तरह के है जार बल व परम बल। ब्रह्मचर्य के सम्यक पालन से जार बल अमृत बल को प्राप्त होता है। अतः **"यथाकामचारों"** यथायोग्य वर्ण आश्रम के आचरणपूर्वक अव्यभिचारी भाव से, यथा योग्य धर्म पालन करते हुए, ब्रह्मचर्य से, यथा समय अमृत बल को प्राप्त करे। और इस अमृत बल ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए भक्ति साधन करे। **"बलमुपास्स्वेति"** ब्रह्मचर्य पूर्वक बल की उपासना करें।

अन्न बल से श्रेष्ठ है, क्योंकि अन्न से शरीर बल आता है और ब्रह्मचर्य बल से प्रज्ञाबल प्राप्त होता है। जिससे व्यक्ति द्वारा परमार्थ कार्य सिद्ध होते हैं। अतः अन्न की ब्रह्म भाव से उपासना करो। अर्थार्थ अन्न का संरक्षण संवर्धन करो। वैष्णव जन अन्न को भगवत् प्रसाद मानते है। खाद्यान्न के उत्पादन वितरण पाक तथा ग्रहण करने की बड़ी पवित्र व मर्यादित व्यवस्था है। **"भवत्यन्नमुपास्स्वेति"** अन्न को भगवान मानकर उपासना करों।

जल अपर व पर दोनों रस शक्तियों से समन्वित है। जल वर्षा से अन्न व अन्न से प्राणादि का बल सम्पन्न होता है। प्राणादि साधन से पूर्वोक्त कथित सभी उपासना, कर्म सम्पन्न होते है। पृथ्वी इस जल से ही मूर्तिवन्त होती है। जल से ही लोक, पर्वत, वनस्पति, अन्न, औषधी पशुपक्षी आदि सब प्राणी है। जल से ही जगत है। और जल

से ही सब कार्यों की तृप्ति होती है। अत: यह जल पूरित करने वाला है। जल को प्रवित्र रखो, जल को शुद्ध रखो धर्म कर्म प्रवृति व यज्ञादि से जल का संवर्धन करें। नदी सरोवर व जलवायु शुद्धि रखकर जल का संरक्षण करो। पेड़ पौधों व जलचर-थलचर-नभचर प्राणियों का संरक्षण कर जलवायु की समृद्धि करों। और जल के पास निवास करते हुए प्रभु उपासना करो। अत: **''अप उपास्स्वेति''** जल की भगवत् भाव से उपासना करों।

यह समस्त जगत के सृजन कर्म व वृति-प्रवृति तेज से ही सम्पन्न होती है। तेज के ताप से ही तपकर वायु के निश्चल होने पर वर्षा होती है। यह तेज ही प्राण के बल ओज रूप में है। अत: जो सदाचार संयम के साथ ब्रह्मचर्य पालन व ईश्वर भक्ति करता है। वह तपस्वी परमगति को प्राप्त करता है। अत: तेज जल से श्रेष्ठ है। **''तेज उपास्स्वेति''** तेज की उपासना करो।

साधु ब्राह्मण परिजन पशु देव आदि का अपने कर्तव्य निर्वहन द्वारा अतिथि आगन्तुक संत ब्राह्मण का समादार सम्मान, छोटो को स्नेह, बराबर वालों से सौहार्द, भूखे को अन्न-पानादि से तृप्त करना तेज की ही उपासना है।

तेज से आकाश प्रधान हैं पूर्वोक्त सारे उपक्रम व सूर्य चन्द्र विद्युत, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, नक्षत्रादि व प्राणी आकाश में स्थित है। आकाश में ही प्रवृत्ति करते है आकाश में ही एक दूसरे को पुकारते हैं। आकाश में ही प्रति श्रवण होता हैं आकाश में अवकाश हैं अत: आकाश में रमण और उत्पत्ति वृद्धि होती है। अत: **''आकाश मुपास्स्वेति''** आकाश की उपासना करो।

आकाश में ही जो कुछ स्थिति है वह सब जड़ चेतन हरि के अधीन है। अत: अनासक्त भाव से धर्ममय जीवन व्यवहार करते हुए, हरि नाम स्मरण पूर्वक, परम प्रभु श्री राधामाधव की भक्ति करना ही आकाश की उपासना है।

स्मरण आकाश से बढ़कर है। क्योंकि **''मनसेवेदमाप्तव्यम्''** मन से ही वेद वर्णित जगत की यथा योग्य प्राप्ति होती है। यह मनन स्मरण से ही सम्भव होता है। स्मरण से ही जान सकते है व सुन सकते है। स्मरण के बिना कुछ भी सम्भव नहीं हैं ''मनसाभिलृप्तों'' मन से ईश्वर का स्मरण व जगत के यथायोग्य व्यवहार का स्मरण होता है। परम प्रभु श्री कृष्ण के अनन्य स्मरण से ही उनकी

प्राप्ति होती है। अतः **''स्मरमुपास्स्वेति''** युगल सरकार श्री राधाकृष्ण की स्मरण पूर्वक उपासना करों। स्मृत का भाव धर्मस्मृति से भी हैं अर्थार्थ धर्म स्मृति अनुसार आचरण करो यह आकाश से बढ़कर हैं क्योंकि धर्म सदाचार से ही यह आकाश में स्थित प्रकृति यथावत उपयोगी बनी रह सकती है अन्यथा विकृत हो जावेगी। धर्म ही सब को धारण करता है और धर्म से ही सबकी रक्षा होती है अतः सब धर्म को धारण करे।

आशा, स्मृति से बढ़कर है। क्योंकि आशा आस्था है और आस्था बिना कोई भी आकांक्षा व धर्म प्रवृति नहीं होती गुरु शास्त्र व ईश्वर में आस्थावान होकर ही लोग धर्म व प्रभु भक्ति में लगते है। आशा से ही जगत के सामान्य-कर्म प्रवृत्त होते है। धर्म की कृपा फल प्राप्ति रूप आशा आकांक्षा से ही अविचल आस्था स्थापित होती है। अतः स्मरण से आशा श्रेष्ठ है। कामनायें आशा से ही समृद्ध होती है। प्रार्थना आशा से ही सफल होती है। अतः **''आशामुपास्स्वेति''** आशा की उपासना करो।

''प्राणो वा आशाया भूयान्यथा'' प्राण आशादि पूर्वोक्त कहे गये सबसे मुख्य है। क्योंकि यह सब व्यवहार प्राण से ही सम्पन्न होते है जैसे रथ चक्र की नाभी में अरे होते हैं, वैसे ही यह सारा जीवन प्राण के ही चारों और है। प्राण ही प्रवृत्त करता है। प्राण के द्वारा ही अन्नादि की प्राप्ति होती है। प्राण ही अन्न को ग्रहण करता है। प्राण के द्वारा ही सन्तान व सन्तान का पालन पोषण होता है। भाई-बहन आदि सम्बन्ध भी प्राण के साथ ही होते है। आचार्य, माता-पिता व ब्राह्मण प्राणों के ही शिक्षा संस्कार करते कराते है। प्राण ही धर्म-अधर्म व्यवहार में प्रवृत्त होते है नष्ट कर्म पर प्राण को ही धिक्कारा जाता हैं श्रेष्ट कर्म पर प्राण को ही सराहा जाता है। प्राण के चले जाने पर कोई कृतिप्रवृत्ति नहीं रहती। अतः इन प्राणों के रहते जीवन में धर्म श्रेयस व भक्ति को साधे। इस शरीर गत प्राण साधन को स्वस्थ, समर्थ रखते हुए व परम प्रभु की निरन्तर भक्ति में संलग्न रहें। क्योंकि इस प्राण प्रवृत यह भक्ति मती ही तुम्हें परम प्रभु श्री कृष्ण की शरण में ले जावेगी। अगर प्राण के रहते जगत में ही आसक्ति करोंगे तो जगत में ही प्राण का आना-जाना व क्लेश पाना बना रहेगा। अतः इन प्राणों का हरि शरणागति पूर्वक उपयोग करें।

श्री सनत् कुमार कहते हैं-जो प्राणी इस प्रकार परमात्मा परमप्रभु श्रीराधाकृष्ण के आस्थावान होकर धर्म व भक्ति के लिए जीवन को श्रेष्ठ कहता हैं वही सत्य कहता है। जो इन प्राणों को परमप्रभु की आस्था के बिना ही श्रेष्ठ कहता हैं वह तो माया के फेर में पड़ा अहंकारी है। अत: प्राणों के रहते जीवन में परम प्रभु श्रीराधाकृष्ण की ही जिज्ञासा व भक्ति करने वाला प्राणी ही श्रेष्ठ है व उसी का जीवन श्रेष्ठ हैं।

''**सत्यं त्वेव विजिज्ञासितव्य मिति**'' प्राणी को अपने प्राण रहते इस परमसत्य को जानने की विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए, भक्ति साधना करनी चाहिए।''**विज्ञानं त्वेव विजिज्ञासित्यमिति**'' सत्य अन्वेषण के लिए उपासना विज्ञान की शरण लेनी चाहिये।

''यदा वै मनुतेऽथ-विज्ञानाति'' जब मनुष्य इस शरीर आदि साधन से परम सत्य श्रीहरि का स्वाध्याय चिन्तन मनन करता है तब ही वह विशेष रूप से जानता हैं। बिना मनन चिन्तन व स्मरण के परमप्रभु को नहीं जाना जा सकता। अत: यह ही स्वाध्याय है यह प्रभु स्मरण चिन्तन; मनन व स्वाध्याय वाली मती ही भक्ति मती है और विशेष जिज्ञासा वाली हैं।

''**यदा वैश्रद्धधात्यथ मनुते**'' यह मनन-स्वाघ्याय, श्रद्धा से ही होता हैं। अश्रद्धावान को ईश्वर मनन नहीं होता। अत: परमेश्वर जिज्ञासु को चाहिये कि वह गुरु, ईश्वर व शास्त्र में श्रद्धा करता हुआ, गुरु से दीक्षा ग्रहण करके, शरणागति भाव से परमेश्वर श्रीराधाकृष्ण का स्मरण, चिन्तन स्वाध्याय करे।

''**यदा वै निस्तिष्ठत्यथ श्रद्धधाति**'' परमेश्वर व गुरु निष्ठा के बिना श्रद्धा नहीं होती और अनन्य श्रद्धा के बिना परम-प्रभु की प्राप्ति नहीं होती। श्रद्धा व निष्ठा एक दूसरे के पूरक हैं। विश्वास से आस्था, आस्था से निष्ठा श्रद्धा में प्रवृत होती है। निष्ठा से धैर्य नहीं गिरता परमार्थ के पथिक का मन पथ बाधाओं से विचलित नहीं होता। जिसमें श्रद्धा व निष्ठा नहीं है वह इधर-उधर में भटकता रहता हैं।

आस्थावान सम्प्रदाय की श्रद्धापूर्वक उपदेश दीक्षा को प्राप्त करे, ''**यदा वै करोत्यथ**'' प्राप्त शिक्षा को जिस समय मनुष्य कृति रूप में व्यवहार करता हैं, तब ही वह सार्थक होती हैं। उपदेश को व्यवहार में लाये बिना परिणाम प्राप्त नहीं

हो सकता हैं, उपासना क्रिया बिना विशेष लक्ष्य की प्राप्ति नहीं होती है। विशेष श्रद्धा से निरन्तर भक्ति उपासना करते रहने से ही परमप्रभु की कृपा सम्भव होती है। प्रभु कृपा से ही परम भक्त को दैन्यादि भावयुक्त प्रेम लक्षणा भक्ति प्राप्त होती है।

''**सुखं त्वेव विजिज्ञासित्व्य**'' मनुष्य सुख प्राप्ति के लिए ही सब उपक्रम करता हैं। एक विषयगत काल्पनिक सुख है जो अस्तित्व से क्षणिक व त्रिविध क्लेशों को देने वाला हैं। दूसरा प्रभु समर्पित भक्ति भाव का सुख है जो श्रेयस्कर है। जिससे परम प्रभु श्री राधाकृष्ण कृपारूप अत्यान्तिक सुख की प्राप्ति होती हैं। निम्बार्क परंम्परा में इसी परम सुख को परमोच्च माना है। इस पराभक्ति से ही चतुर्विध फल के साथ परमपुरुषार्थ रूप प्रेमानन्द प्राप्त होता है। यह परा-अपरा भक्ति उत्तम साधन है और सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के पदारविन्द का अनन्य सुख प्रदान कराने वाली हैं। अत:**अनन्य श्रद्धा पूर्वक परम सुख विशेष की प्राप्ति का मनवच कर्म से प्रयत्न करना चाहिए।**

(रसो वै सः रसं ह्योवायं लव्ध्वाऽऽनन्दी भवति)

जो रसेश्वर सर्वात्मा है वह ''भूमा'' है जो जगदात्मा है वे रस स्वरूप है और वे रसेश्वर श्री कृष्ण है उन रसेश्वर आनन्द स्वरूप श्री कृष्ण को प्राप्त करने वाला आनन्द परिपूर्ण होता है। वह रसानन्द स्वरूप जीव ''स्व'' स्वभाव वाला होने से वह भी ''भूमा'' है।

यह जो आत्यन्तिक सुख है यह 'भूमा' रूप है अल्प नहीं हैं। अल्प तो माया विषयक सांसारिक सुख हैं। 'भूमा' तो वह है जो सारे जगत के भूत प्राणियों में रसात्म श्री कृष्ण को देखता है निजवत देखता है। आत्मवत देखता है और सर्वत्र तथा सबमें श्री कृष्ण के ही स्वरूप व प्रतीभा का अनुभव करता है। सभी में श्री परमप्रभु को प्रतिष्ठित जानता है। किसी से ईर्ष्या द्रोह नहीं करता हैं। जिनकी स्वभाव से ही काम-क्रोध-मद-मोह आदि माया विकारों में लिप्तता नहीं होती है वे समस्त गुणगण समूह के ज्योति पुञ्ज भगवान रस सर्वेश्वर श्री कृष्ण है सर्वेश्वर श्रीकृष्ण के कृपानुरागी आत्म दृष्टा 'भूमा' हैं। यह भूमा दृष्टि विश्व की तरह विशाल हैं। इस 'भूमा' सुख की विशेष रूप से जिज्ञासा करनी चाहिए अर्थात् परम प्रेम से ही 'भूमा' सुख का आनन्द अनुभव होता है।

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति, भूमानं भगवो विजिज्ञास इति।।

छा. ७-९३-७।।

सर्वात्मा रसात्मा सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही सत्य स्वरूप सर्वाभौमिक जगदात्मा हैं वे ही परम तत्वार्थ से सुख स्वरूप है उन्हें जानने की जिज्ञासा करनी चाहिए।

जो सर्वेश्वर सत्ता के अतिरिक्त प्राकृतिक विकारों व सुख-दुख को नहीं देखता। माया विषयक इन्द्रिय सुख की तरफ नहीं ललचाता, वह जगत में परम प्रभु के अतिरिक्त किसी सत्ता को अनुभव नहीं करता, नहीं मानता। श्री राधाकृष्ण मय ही जिसकी गति मति है वह अनन्य श्रद्धावान "भूमा" हैं। जो विषयों को सुनता है, विषयों को जानता है, विषयों को देखता है, वह विषय विकारग्रस्त 'अल्प' है। 'अल्प' जीवन गुण कर्म वृत्ति में बद्ध है व मृत्य हैं। और सर्वत्र ईश्वर प्रतिभा देखने वाला भूमा है वह अमृत है। यह प्रेमानन्द में मग्न, अमृत-रस-पायी, सर्वत्र-सम-दृष्टि वाला "भूमा" किसमें प्रतिष्ठित है ? अपनी ही महिमा में। कैसे ? जो दिव्याभावामृत परम आह्लादिनी पराश्री राधा हैं। यह ही सब विकारों से सर्वथा परे है। इन्हीं राधाजी के भाव में निखिल भुवन मोहन समस्त गुण गण राशि रस राज भगवान श्री कृष्ण प्रतिष्ठित है। यह ही निर्मल शक्ति रूप सर्वव्याप्त है। यह ही दिव्य स्वरूप से लीलाविग्रह धारण किये हुए हैं। जो सब विकारों से सर्वथा परे हुआ प्रेमानन्द मुग्ध सर्वत्र परमेश्वर दृष्टि वाला 'भूमा' हैं। वह अमृत स्वरूप में प्रतिष्ठित हैं। भक्त व भगवान की एकभाव अवस्था ही प्रेमानन्द व रसानन्द अवस्था है। यह परम प्रेम प्रपन्न 'भूमा' अपने आप की ही प्रेम मय महिमा में स्थित है।

लोक में गौ, अश्व, हाथी, दास, भू-मण्डलीय यश, ख्याति आदि को महिमा कहा गया हैं। लेकिन यह लोक की महिमा हैं। यह अन्य पदार्थ की अन्य से संबंधित महिमा है। सनत्कुमार जी कहते है-'भूमा' के संबंध में मेरा यह कथन नहीं है। 'भूमा' तो परम के साथ एक भाव हुआ सब जीवों में समात्म भाव अनुभव करता हैं, परम भावापन्न होकर प्रभु के परिकर समुह का अभिन्न अंग हो जाता है। सर्वत्र आत्मवत देखता हुआ परम प्रभु के साथ सर्वदा अनन्य भावानुराग में मग्न हैं।

रस सर्वेश्वर श्री राधाकृष्ण के अभिन्न सानिध्य को प्राप्त 'भूमा' समदृष्टि को प्राप्त हो जाता है और सर्वत्र समदृष्टि से देखता हुआ, जगत नियन्ता परमप्रभु सर्वेश्वर श्रीकृष्ण का ही सर्वत्र अनुभव करता है, वे ही आगे, वेही पीछे, वेही उपर, वेही नीचे, वेही दायें, वेही बाय, और सब ओर हैं। कभी उन्मुक्त होकर परम प्रभु के सानिध्य से अपने को सर्वत्र अनुभव करता हुआ कहता है। मैं ही आगे, पीछे, दायें, बायें, ऊपर, नीचे हूँ। मैं ही यह सब हूँ।

कभी, रसात्मा का सानिध्य प्राप्त भूमा अनुभव करता हैं। आत्मा ही आगे,पीछे, वह ऊपर, नीचे सब ओर है। परम प्रेम रसानन्द प्राप्त भूमा आत्मरति, आत्मक्रीड़, आत्ममिथुन और आत्मानन्द वाला होता है। और यह ही आंत्यायिक सुख हैं।

'भूमा' को फिर इस जीवन के लिए लौकिक पदार्थों की कामना नहीं होती है। वह परमहंस रूप होकर, रसात्मा में ही देखने वाला, दिव्यदृष्टा, आत्मा में ही मनन वाला मनस्वी, रसाात्मा में ही प्राण, आशा व स्मृति वाला हो जाता है। आत्मा से ही तेजवाला आत्मा में ही, आविर्भाव तिरोभाव वाला, अर्थात् जिस समय जो संकल्प करता है वैसा ही हो जाता है अर्थात उसके लिए असम्भव कुछ नही होता। रसात्मा से ही अनन्य बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाक, नाम, मंत्र व कर्म सब की सूक्ष्म गति सामर्थ्य वाला हो जाता है। जिस तरह सर्वेश्वर श्री कृष्ण के स्वभाव से सतधर्म प्रवाहित होता है। संकल्प पूर्वक यह सब कुछ होता है वैसे ही 'भूमा' सतचित्त आनन्द परिपूर्ण हो जाता है।

तदेष श्लोको न पश्यो मृत्युं पश्यति न रोगं नोत दुःखताँ, सर्वँ, ह पश्यः पश्यति सर्वमाप्नोति सर्वश इति । स एकधा भवति-त्रिधा भवति पञ्चधा सप्तधा नवधा चैव पुनश्चैकादशः स्मृत शतं च दश चैकश्च सहस्त्राणि च विँ, शतिराहारशुद्धौ सत्वशुद्धिः सत्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति भगवान सनत कुमारस्तुँ, स्कन्द इत्याचक्षते तँ, स्कन्द इत्माचक्षते।। छा.७-२६-२।।

इस प्रभु पार्षद भूमा के संबंध में यह श्लोक है – वह विद्वान पार्षद न मृत्यु देखता है,न रोग न दुख, वह परम सत्य श्री हरि के सनातन नियम के अधीन, यथामती सब को यथावत योग्य गति पाता हुआ देखता है। अत: परिणिति को जानकर, दुख: शोक नहीं करता, एक होकर भी यथेच्छ रूप धारण कर सकता है। अन्नादि आसक्त व्यवहार से मुक्त होने के कारण अन्त: करण शुद्ध और निर्मल होता है वासनायें नष्ट हो जाती है सम्पूर्ण ग्रंथियों की निवृत्ति हो जाती है। रस परिपूर्ण भूमा परम प्रभु की अविचल भाव भूमि में स्थिर होता है। इस दिव्य 'भूमा' विद्या का अनुदान कर परमऋर्षि सनत् कुमार जी ने देवर्षि नारद को समस्त विद्याओं की आत्मा का बोध कराकर परम रसेश्वर परावर परम सत्य सर्वेश्वर श्री हरि के दर्शन कराये। तब से अमृत देह देवर्षि नारद जी समस्त लोकों में निरन्तर भगवत स्मरण पूर्वक यथेच्छ गति से विचरण करते हुए रसेश्वर सर्वेश्वर श्री हरि श्री कृष्ण की भक्ति का प्रचार–प्रसार करने लगें।

भक्ति सूत्र

देवर्षि नारद उपदिष्ट

ध्यान

सजल जलद नीलं दर्शितोदार शीलं।
करतल धृत शैलं वेणु वाद्यरसालम्।।

व्रजजन कुलपालं कामनिकेली लोलं।
तरुण तुलसि मालं नोमि गोपाल बालम्।।

अथातो भक्तिं व्याख्यास्यामः ।।१।। सा त्वस्मिन् परम प्रेम रूपा ।।२।। अमृत स्वरूपा च ।।३।। यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति, अमृतो भवति तृप्तो भवति।।४।। यत्प्राप्य न किन्चिद्वाच्छति न शोचति न द्वेष्टि न रमते नोत्साहि भवति ।।५।। यज्ज्ञात्वा मत्तो भवति स्तब्धो भवति आत्मारामो भवति ।।६।। सा न कामयमाना निदोधरूपत्वात् ।।७।। नरोधस्तु लोक वेदव्यापार न्यासः ।।८।।

तस्मिन्ननन्यता तद्विरोधिषूदासीनता च ।।६।। अन्याश्रयाणां त्यागोऽन्यता ।।१०।। लोके वेदेषु तदनुकूलाचरणं तद्विरोधिषूदासीनता ।।११।। भवतु निश्चय दाढ्र्यादूर्ध्वं शास्त्र रक्षणम् ।।१२।। अन्यथा पातित्याशंकया ।।१३।।

लोकोऽपि तावदेव किन्तु भोजनादिव्यापारस्त्वा शरीरधारणाविधि ।।१४।। तल्लक्षणानि वाच्यन्ते नानामत भेदात् ।।१५।। पूजादिष्वनुराग इति पराशर्य ।।१६।। कथादिस्विति गर्गः ।।१७।। आत्मरत्यविरोधेनेति शाण्डिल्यः ।।१८।।

नारदस्तु तदर्पिता खिलाचारिता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति ।।१६।। अस्त्येवमेवम् ।।२०।। यथा ब्रजगोपीकानाम् ।।२१।। तत्रापि न महात्म्यज्ञानविस्मृत्यपवादः ।।२२।। तद्विहीनं जाराणामिव ।।२३।। नास्त्येव तस्मिस्तत्सुखित्वम् ।।२४।। सा तु कर्म ज्ञान योगेभ्योऽप्यधिकतरा ।।२५।। फलरूपत्वात् ।।२६।। ईश्वरस्याप्यभिमान द्वेषित्वाद् दैन्य प्रियत्वाच्य ।।२७।।

तस्या ज्ञानमेव साधनमित्येके ।।२८।। अन्योन्याश्रयत्वमित्यके।।२६।। स्वयं फलरूपतेति ब्रह्मकुमाराः ।।३०।। राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात् ।।३१।।

न तेन राज परितोषः क्षुधा शान्तिर्वा ।।३२।। तस्मात्सैव ग्राह्या मुमक्षुभिः ।।३३।। तस्याः साधनानि गायन्त्याचार्याः ।।३४।। तन्तु विषयत्यागात संगत्यागाच्च ।।३५।। अव्यावृत् भजनात् ।।३६।। लोकेऽपि भगवतगुण श्रवण कीर्तनात् ।।३७।। मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा ।।३८।। महतत्संगस्तु दुर्लभोऽगम्योंऽमोघश्च ।।३६।। लभ्यतेऽपि तत्कृपयैव।।४०।।

तस्मिंस्तज्जने भेदाभावात्।।४१।। तदेव साध्यताम् तदेव साध्यताम्।।४२।। दुःसंगसर्वथैव त्याज्यः ।।४३।। काम क्रोध मोह स्मृति भ्रंश बुद्धिनाश सर्वनाश कारणत्वात्।।४४।। तरंगायिता अपीमेसंगात्समुद्रायन्ति ।।४५।। कस्तरति कस्तरित मायाम् यःसंगास्त्यजति यो महानुभावं सेवते निर्ममो भवति।।४६।। यो विविक्तस्थानं सेवते यो लोकबन्ध मुन्मूलयति निस्त्रैगुण्यो भवति योगक्षेमं त्यजति।।४७।। यः कर्मफलं त्यजति, कर्माणि सन्यस्यति ततो निर्द्वन्द्वो भवति ।।४८।। वेदानपि संन्यस्यति केवलम विच्छिन्नानुरागं लभते ।।४९।। स तरति स तरति स लोकांस्तारयति ।।५०।।

अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपम् ।।५१।। मूका स्वादनवत् ।।५२।। प्रकाशते क्वापि पात्रे ।।५३।। गुणरहितं कामनारहितं प्रतिक्षणवर्द्धमानमविछिन्नंसुक्ष्मतरमनुभव रूपम् ।।५४।। तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव श्रृणोति तदेव भाषयति तदेव चिन्तयति ।।५५।।

गौणी त्रिधा गुण भेदादार्तादि भेदाद्वा ।।५६।। उत्तरस्मादुत्तरस्मात्पूर्वपूर्वा श्रेयाय भवति ।।५७।। अन्यस्मात् सौलभ्यं भक्तौ ।।५८।। प्रमाणान्तरस्यान पेक्षत्वात् स्वयं प्रमाणत्वात् ।।५९।। शान्तिरूपात्परमानन्द रूपाच्च ।।६०।। लौकहानौ चिन्ता न कार्या निवेदितात्मलोक वेदत्वात् ।।६१।।

न तत्सिद्धौ लोकव्यवहारो हेयः किन्तु फल त्यागस्तत्साधनं च कार्यमेव ।।६२।। स्त्री धन नास्तिक वैरि चरित्र न श्रवणीयम् ।।६३।। अभिमान दम्भादिकं त्याज्यम् ।।६४।।

तदर्पिताखिलाचारः सन् कामक्रोधाभिमानादिकमं तस्मिन्नेव करणीयम् ।।६५।।

त्रिरूपभंगपूर्वकं नित्यदास नित्यकांता भजनात्मकं वा प्रेमैव कार्यम प्रेमैव
कार्यम् ।।६६।। भक्ता एकान्तिनो मुख्या ।।६७।। कण्ठावरोध
ारोमाञ्चाश्रुभिः परस्परं लपमानाः पावयन्ति कुलानि पृथिवीं च ।।६८।।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि सुकर्मीकुर्वन्ति कर्माणि सच्छास्त्री कुर्वन्ति शास्त्राणि
।।६९।। तन्मयाः ।।७०।। मोदन्ते पितरो नृत्यन्ति देवताः सनाथा
चेयं भूर्भवति ।।७१।। नास्ति तेषु जाति विद्या रूप कुल धन
क्रियादिभेदः ।।७२।। यतस्तदीयाः ।।७३।। वादो नावलम्ब्यः ।।७४।।
बाहुल्यावकाशादनियतत्वाच्च ।।७५।। भक्ति शास्त्राणि मननीयानि
तदुद्बोधक कर्माण्यपि करणीयानि ।।७६।। सुख दुःखेच्छालाभादित्यक्ते
।।७७।। अहिंसा सत्य शौच दयास्तिक्यादि चारित्र्याणि परिपालनीयानि
।।७८।।

सर्वदा सर्वभावेननिश्चिन्तितैर्भगवानेव भजनीयः ।।७९।। संकीर्त्यमानः
शीघ्रमेवाविर्भवति अनुभावयति च भक्तान् ।।८०।। त्रिसत्यस्य भक्तिरेव
गरीयसी भक्तिरेव गरीयसी ।।८१।। गुणमहात्म्यासक्तिरूपासक्ति पूजासक्ति
स्मरणासक्ति दास्यासक्ति सख्यासक्ति कान्तासक्ति वात्सल्यासक्ति
आत्मनिवेदनासक्ति तन्मयासक्ति परम विरहासक्ति रूपा एकधाप्यैकादशध
ा भवति ।।८२।। इत्येवं वदन्ति जन जल्पनिर्भया एकमताः
कुमारव्यासशुकशाण्डिल्यगर्गविष्णुकौण्डिन्य
शैषोद्धवारूणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः ।।८३।। य इदं
नारद प्रोक्तं शिवानुशासनं विश्वसिति श्रद्धत्ते स प्रेष्ठं लभते स प्रेष्ठं
लभते इति ।।८४।।

❑❑❑
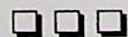
भक्ति सूत्र

देवर्षि श्री नारद उपदिष्ट

भक्ति के आचार्य देवर्षि नारद जी भक्ति की सूत्रात्मक व्याख्या करते हुए कहते है - भाव के रूप में भक्ति परम प्रेम रूप है। (२) प्रभाव के रूप में भक्ति अमृत स्वरूप है। (३) परम प्रेम रूप में जो इस भक्ति को धारण करता है वह लक्ष्य सिद्ध हो जाता हैं जीवन क्लेश से मुक्त होकर अमर हो जाता है। रस स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर रसानन्द से परम तृप्त हो जाता है। (४) दिव्य भाव वपु से रसेश्वर राधा कृष्ण की भक्ति का परम सुख पाकर संसारिक विषय कामना नहीं करता न संसारिक चिन्ता करता है न किसी से ममता करता है न किसी से द्वेश करता और नही सांसारिक काम विषय में भक्त का कोई उत्साह होता है (५) रसेश्वर सर्वेश्वर श्री राधाकृष्ण को प्रेम विशेष रूप में जानकर भक्त आत्म-विभोर हो जाता है काम विषय से स्तब्ध चित्त हो जाता है और परम आत्मा सर्वेश्वर श्री कृष्ण में ही भाव रमण करने लगता है। (६) जो श्रुति कहती हैं "रसो वै सः रस ह्येवाय आनन्दी भवति" इस रस स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करके रसानन्द मय हो जाता है यह ही बात परम ऋषि सनत् कुमार जी ने देवर्षि को परम बोध कराते हुए (छा.उ.अ. ७ खण्ड -२४) "कुछ अन्य नही देखता कुछ अन्य नही सुनता कुछ अन्य नहीं जानता वह "भूमा" है।" कहकर कही है।

जो अन्य देखता है अन्य सुनता है और विविध विधि जानता भी है वह अल्प है 'भूमा' है वही अमृत हैं अल्प है वही मर्त्य है तब नारद जी ने पूछा था कि 'भूमा' किस में प्रतिष्ठित हैं तब सनत्कुमार जी ने कहा कि "स्वेमहिम्नि यदि वा न महिम्नीति" अपनी महिमा में व अपनी महिमा में भी नही।

आत्मा परमात्मा जगत महिमा में भी हैं और उस से निर्लिप्त है। किन्तु वह 'भूमा' जगत ख्याति से परे आत्मा की अलौकित परम प्रेम महिमा में ही रमण करता है। अपने आराध्य सर्वेश्वर श्री कृष्ण को "रसों वै सः" के अनुसार "स एवाधस्तात्स उपरिष्ठात्स पश्चात्स पुरस्तात्स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेद ँ सर्वमित्य" वही नीचे उपर पीछे आगे दांये बांये ओर सब तरह हैं सबमें है ऐसा अनुभव करता है। एकत्व, अहंमत्व भाव से मैं ही उपर नीचे आगे पीछे दांये बांये और सब तरफ हूँ और आत्म भाव से आत्मा ही उपर नीचे आगे पीछे दांये बांये और सब तरफ है ऐसा अनुभव करता है। "आत्मरति आत्मकिड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स. स्वराड़ भवति"(छ-७-२५-२) छठे सूत्र तक यह तथ्य देवर्षि कहते है। सनत्कुमारजी ने जो "तन-मन चित्त" शुद्धि हेतु आहार शुद्धों सत्वशुद्धि सत्वशुद्धो ध्रुवा स्मृति स्मृतिलभ्ये सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै" आहार शुद्धि सत्व शुद्धि सत्व शुद्धि से ध्रुव स्मृति (प्रभु प्रीति) और प्रभु स्मृति से सर्व ग्रन्थियों के निवृति का बोध कराया वही बोध भक्ति सूत्र के माध्यम से देवर्षि करा रहे हैं और इसी भक्ति तत्त्व का बोध जगद्गुरु निम्बार्काचार्य करा रहे है। "उपास्य रूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्ति रस स्तत परम्। विरोधिनोरूपमथैतदाप्ते ज्ञैर्याइमेऽर्थाअपिपञ्चसाधुमिः"।।१०।। वेदश्लोकी।

"नान्या गति कृष्ण पदारविन्दात्" (८) प्रहाणयेऽज्ञान तमोऽनुवृते (६) हे जीव अज्ञान अन्धकार से पार पाने के लिए कृष्ण चरणारविन्द की उपासना कर "सनन्द नाधैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्री नारादायाखिलतत्वसाक्षिणे" (६) जो सनदनादि व देवर्षि नारद की बताई हुई है। उसी उपास्य और भक्ति उपासना को "सर्वेश्वर सुखकरं रसिकेश भूपम" रसिक शिरोमणि सर्वेश्वर श्री कृष्ण व इनकी भक्ति को सुख कर कहा है।

भागवद् प्रसंग में श्री कृष्ण ने उद्धव को बताया कि -

अप्रमतोऽनुयुञ्जीत मनो मय्यर्पयञ्छनैः।

अनिर्विण्णो यथा कालं जितश्वासो जितासनः।।१३।।

एतावान योग आदिस्टो मच्छिष्यैः सनकादिभिः।

सर्वतो मन आकृष्य मयद्धाऽऽवेश्यते यथा।।१४।।

सात्विक सदाचार आहार-विचार पूर्वक मेरी (श्री कृष्ण की) भक्ति करता हुआ प्राणों की चंचलता पर विजय प्राप्त करें। शनैः शनैः आनासक्त चित्त होकर अपना मन चित्त मुझ श्री कृष्ण को अर्पण करे अर्थात श्रीकृष्ण के शरणागत हो जावे। भगवान हंस से प्राप्त इसी भक्ति योग को सनकादिकों ने जगत में प्रसारित किया कि सब तरफ से मन को हटा कर मेरे धाम स्वरूप में लगा दें। अर्थार्थ धाम विराजित श्री राधाकृ[illegible] के स्वरूप में ध्यान लगावें। यही भक्ति उपदेश सनकादिकों ने नारद जी को दिया व यही उपदेश नारदजी ने श्री निम्बार्काचार्य जी को दिया व यही उपदेश जगद्गुरु निम्बार्काचार्य जी ने श्री निवासाचार्य जी को व जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य परम्परा ने समस्त जगत को दिया।

लौकिक काम्य कर्म लोक प्रवृत है (८) परा भक्त का परम प्रभु में अनन्य अनुराग व शरणागति होने से लौकिक विषय कार्यों से विरोध रहता है। (७) वही भक्ति सच्ची है जब परम प्रभु के प्रति अनन्यता हों प्रभु-भाव विरोधी अन्य अन्य प्रवृतियों के प्रति उदासीनता हो। (९) रसेश्वर श्री कृष्ण के अतिरिक्त अन्य कोई आशा आसक्ति न हो (१०) जीवन जीते हुए वे ही लौकिक वैदिक कार्य करें जिनसे प्रभु का भक्ति भाव व अनुकूलता प्राप्त हों अर्थात सद्शास्त्र व सद्गुरु के आदेश अनुशासन अनुरुप जीवन अपनावे (१२) सद्शास्त्र व गुरु के आदेश निर्देश अनुसार जीवन जीने से पतित होने का डर नही रहता। (१३) प्रभु में अनन्य ध्यान समाधी आह्लाद आवेश के अतिरिक्त बाह्य बोध रहे तब तक शास्त्रानुसार सदाचार व्यवहार सात्विक खान-पान करते रहे। विभिन्न आचार्यों ने भक्ति में कई प्रकार के अन्तराय व प्रवृत्तियाँ बताई हैं। (१५) पाराशर द्वारा पूजा गर्ग जी द्वारा कथा, शाण्डिल्य द्वारा आत्मरति (१६) व नारद जी द्वारा भक्ति को परमेश्वर श्री राधाकृष्ण के शरणागत अनन्य भाव परक व विरह व्याकुल "परम प्रेम" रूप बताया है (१९) वास्तव में अनन्य समर्पण ही भक्ति का वास्तविक स्वरूप है।(२०) **जैसे व्रज गोपियो का है।** (२१) एक उद्धरण द्वारा जार भाव का प्रेम व परम प्रेम विरोधाभासी बताते हुए कहा है कि प्रभु महात्म्य को जानने समझने से ही "परम-प्रेम" होता है। (२२-२३) जार प्रेम तत्सुख में सुखी होना नही है अर्थार्थ प्रभु प्रेमी ही प्रभु सुख से सुखी होता है। (२४)

भक्ति को कर्मज्ञान व योग से अधिक श्रेष्ठ बताकर इन कर्म, ज्ञान, योग आदि की सफलता भी परमभक्ति भाव से ही कही गई है। (२५) यह भी कहा है भक्ति तो ज्ञान योग के बिना, भाव से भी परमसिद्धि को प्राप्त हो सकती है। क्योंकि भक्ति तो स्वयं फलरूपा है (२६) भगवान को अभिमान, द्वेष, भाव वृत्तियों अप्रिय है निर्मल अन्त:करण से दैन्य निवेदन व परम अनुराग ही प्रिय है। (२७) भक्ति से ज्ञानानुभाव स्वत: होता है अत: भक्ति व ज्ञान का अनन्याश्रय है (२८) अत: यह भक्ति प्रभु कृपा फल प्राप्त है। अपने गुरुजनों का अनुशासन बताकर कहा कि ब्रह्मकुमारों ने भी भक्ति को स्वयं फलरूपा बताया है (३०) उद्धहरण भी दिया - जैसे राजगृह व भोजन को देखने से तृप्ति नहीं होती। राज के सुखभोगने व भोजन के पाने से ही तृप्ति होती है। मुमुक्षु को भक्ति का ही आश्रय लेना चाहिए। इसी तरह भगवान की स्वरूपत: भक्ति से ही प्राप्ति व तृप्ति होगी। (३१-३३)

काम विषय व कुसंग त्याग पूर्वक अनन्य अनुराग से भगवान का निरन्तर भजन करना चाहिए। भगवन् नाम स्मरण विग्रहसेवा देर्शन, भगवतउत्सव, भगवतगुणलीला श्रवण व कीर्तन आदि निरन्तर करते रहना हितप्रद है। (३४-३६)

ये भगवतसाधन और भक्ति परम प्रेमानुरागी परम गुरु की कृपा से प्राप्त होती है। (३८) अत: परम भागवत महात्माओं का दर्शन सेवा संग करना अमोघ है। (३९) महात्माओं का संग सानिध्य प्रभु कृपाजन्य है। (४०) भगवान व उनके भक्तों में अन्तर नहीं रहता है। और इन्हीं परमतत्व अनुरागी हरि भक्तों को अपना गुरु बनाना हितकर है। ऐसे परम भावुक वैष्णव विभूतियों की सेवा करना हितप्रद है। (४२)

दुसंग को त्यागते हुए कामक्रोध, मोह, लोभ आदि प्रवृत्तियों को छोड़ देना उचित हैं। क्योंकि इनसे प्रभु अनुराग की हानि और प्रज्ञा बुद्धि का क्षय होता है जो पतन के हेतु है। (४३-४४) यह काम क्रोध आदि मन में समुद्र की तरंगवत उठते हैं और विशाल आकार ले लेते हैं (४५) अत: इनसे सावधान रहें क्योंकि यह ही माया में भरमाने वाले हैं। फिर माया से कौन तरता है? (४६)

सब तरह के विषय का त्याग व संसार में निष्काम, निर्लिप्त भाव से विचरता हुआ परमार्थी भागवत भक्त वैष्णवजनों की सेवा करता है और सांसारिक फलाकांक्षा से रहित होता है, ममतारहित होता है। सब तरह की विषय आकांक्षाओं से विरक्तचित्त

व नियमित, शुद्ध शांत स्थान पर प्रभु का ध्यान स्मरण करता हुआ शनैः शनैः मायाआवरण को क्षीण करके लौकिक ऋणानुबन्ध तोड़कर योग-क्षेम की चिन्ता त्याग, प्रभु शरणागत त्रिगुण प्रकृति के माया प्रभाव से परे हो जाता है। सब कर्म फलों को त्याग कर अत्यन्ता अवस्था में कर्मों से भी सन्यास ले लेता है। और संकल्प विकल्प के द्वन्द से रहित हो जाता है। इस तरह वेदवर्णित लौकिक कर्मों से सहज ही ऋणा मुक्त होकर निश्छल चित्त हुआ केवल परम प्रभु नित्य निकुन्ज विहारी श्री राधामाधव के प्रेमानुराग को प्राप्त कर लेता है। इसतरह जो निश्छल चित्त हो प्रभु प्रेमानुराग को प्राप्त करता है वह इस मायाविषयी संसार से तरता है और वह अपने निर्मल दिव्य प्रभाव से कई जीवों को तथा कई लोकों को भी तार देता हैं।(४७-५०)

यह अविछन्न प्रेमानुराग व इसका अनुभव वाणी से कहने में नही आता। (५१) यह गूंगे के स्वाद की तरह स्वयं को ही अनुभव होता है। (५२) और यह कभी-कभी किसी विरले पात्र में ही संपूर्ण रूप से प्रकट होता है। (५३)

यह परमप्रेम गुण व कामना रहित है अतः प्रतिक्षण नित्य नूतन रूप से बढ़ता रहता हैं इन परम प्रेमानन्द में विच्छेद नहीं आता लीला स्वरूप व लीला प्रकरण तथा भाव प्रकार बदलते हुए भी यह प्रेम नित्य नूतन व सतत वर्धमान अवस्था में अग्रसर रहता है और सदैव बना रहता है। यह परम प्रेम अतिसूक्ष्म और अविछन्न प्रेमानुरागी को ही अनुभव होता है। (५४) ऐसा अविछन्न प्रेमानुरागी ही परम-प्रभु की मधुरातीमधुर नित्य निंकुञ्जस्थ लीला स्वरूप को परम प्रेम प्रवृति से देखता है। श्यामाश्याम बिहारी की प्रेम प्रवण लीला व स्वरूप को देखता है। इस मधुर लीला की वाणी को ही सुनता है और उन प्रेम निधि युगल सरकार के लीला स्वरूप का ही चिन्तन का वर्णन करता है।(५५)

तीन तरह की गोणी भक्ति के लक्षण बताते हुए कहा है कि ये गोणी भक्ति भी उत्तरोत्तर क्रम से यथार्थ भक्ति में सम्मिलित हो सकती है। (५६-५७) यह भक्ति अन्य उपासना साधन से सहज सुलभ है। (५८)और स्वयं प्रमाण है। (५९) यह भक्ति शांत स्वरूप व परमानन्द रूप है। (६०)

गोणी व यथार्थ भक्ति का अंतर बताने के लिए कहा - अनन्य प्रभु अनुरागी को लोक हानि की चिन्ता नहीं होती क्योंकि वे प्रभु के शरणागत व समर्पित हो

चुके हैं। (६१)गोणी भक्ति से तत्पर को परमभक्ति में सिद्धि न मिले तब तक लोक व्यवहार का त्याग नहीं करना चाहिए। फलाकांक्षा त्याग कर कर्त्तव्य कर्म करते हुए भक्ति साधन करते रहना हितावह है। (६२) भक्त की भक्ति साधना में स्त्री, धन, नास्तिक का संग व आसाक्ति और वैर द्वेष के व्यवहार तथा ऐसे चरित्रवान बाधक हैं। अत: इनसे लौकिक महत्व का संसर्ग नहीं करना चाहिए। (६३) प्रभु को सब आचरण समर्पण करते हुए साधक अन्त में अगर, काम, क्रोध, मद, अभिमान आदि भी हों तो उन्हें भी प्रभु के समर्पित कर देना चाहिए अर्थात् प्रभु से दैन्य भावपूर्वक प्रार्थना करनी चाहिए कि- हे प्रभु हमें इन विकारों से बचाओ। (६४-६५)

इस तरह गोणी भक्ति से भी शनैः शनै प्रभु शरणागति का भाव सिद्ध हो जाता है और प्राकृत त्रिरूप सम्बन्ध का भंग हो जाता है। त्रिरूप भंगता उपरान्त साधन को परम प्रभु का नित्यदास, नित्यकान्ता सख्यादि भाव से प्रेमानुराग करना चहिए। (६६) गोणी भक्ति से परम प्रेम के मार्ग में आने वालों को प्रभु का विशेष प्रेम चाहने के लिए समस्त लौकिक संग त्याग कर एकान्त में प्रभु का ध्यान,भजन, करना हितप्रद है। इससे प्रभु प्रेम, चित्त में स्थायी रूप से स्थापित हो जाता है। (६७) अनन्य भक्ति स्थिर हो जाने पर साधक व्यक्तित्व पर क्या लक्षण घटते हैं यह बताते हुए नारद जी कहते हैं कि-भक्त प्रभु कीर्तन स्मरण करते हुए गद्‌गद् कंठ हो जाता है। हरि के नाम पर ही रोमांच होने लगता है। परम प्रेम में अश्रु धारा नेत्रों में छलकने लगती है और भक्त, भावुक होकर भगवान से संभाषण भी करने लगता है। परम प्रेम में अश्रु धारा नेत्रों में छलकने लगती है और भक्त, भावुक होकर भगवान से संभाषण भी करने लगता है। (६८) ऐसे परम प्रेमी भक्त का महात्म्य बताते हुए नारद जी ने कहा - अनन्य प्रेमी भक्त अपने कुल, देश, समाज और पृथ्वी को पावन कर देता है। पावन भक्त वैष्णव के पदार्पण से तीर्थ सुतीर्थ हो जाते हैं उनके द्वारा किये कर्म व कर्त्तव्य सुकर्म बन जाते हैं उनके पठनीय मननीय शास्त्र सद्शास्त्र हो जाते हैं और उनकी वाणी सिद्ध आर्षवचन हो जाते हैं। (६९) क्योंकि वे एक ही भाव से परमप्रभु में तन्मय हो गये हैं। उनमें व प्रभु में भावनात्मक रूप से कोई अन्तर नहीं रहा है। (७०) ऐसे भक्तों को देखकर पितृगण प्रमुदित होते हैं देवता नृत्य करते हैं और पृथ्वी कृतार्थ हो जाती है। (७१) परम भक्त जाति, कुल, रूप,

विद्या, धन आदि क्रिया भेद के बर्ताव से परे हो जाते हैं। (७२) इसीलिए वहाँ सांसारिक कर्म कर्तव्य का भेद नहीं रहता। भक्त को वाद-विवाद करना उचित नही क्योंकि वाद विवाद का कोई अन्त नही है। भक्ति भाव की निरन्तरता में वाद-विवाद का अवसर ही नहीं है। (७३-७५)

भक्ति साधन की प्रगाढ़ता के लिए भक्ति शास्त्र का मनन करते हुए भाव समृद्धि कारक सत्कर्म करते रहना उचित है क्योंकि तब तक निरन्तर निष्काम कर्म व भगवतभजन में संलग्न रहना चाहिए जब तक सुख-दुख इच्छा लाभ आदि का मन पर प्रभाव होता रहता है। (७६-७७) यथार्थ भक्ति सब तरह की मनोव्यथाओं से रहित होने पर ही प्रकट होती है। और मनोव्यथा रहित चित्त ही यथार्थ भक्ति की पात्रता है। भक्ति की पात्रता पाने के लिए साधक को कर्मप्रभाव प्रदीप्त रहने तक अहिंसा, सत्य, शौच, दया, आस्तिकता आदि आचरणीय धर्म सदाचार के पालन को हितावह बताया है। (७८) और कहा है कि निष्काम धर्माचरण करते हुए साधक को सर्वदा सब वासनाओं से रहित हो निश्चित होकर भगवान का भजन ही करना चाहिए। (७९)

इस तरह देवर्षि नारद जी ने भक्ति के स्वरूप, प्रकार, प्रवृत्ति, अन्तराय, भक्ति के लक्षण, साधक के लक्षण, साधक पर घटने वाले घटनाक्रम, आचरण, दिनचर्या आदि धर्मपृवृत्तियों को बताकर असत व भक्ति विरोधी प्रवृत्तियों से सावधान करते हुए भक्ति की सभी प्रणालियों में एक मात्र भगवत प्रेमानुराग को ही सर्वश्रेष्ठ बताया और विशिष्ट रूप से बोध कराया कि "भगवान प्रेम पूर्वक नाम कीर्तन स्मरण से ही प्रसन्न होकर शीघ्र प्रकट होते हैं औरभक्त को अपना अनुभव करा देते हैं। (८०)" और कहा कि त्रिसत्यों में भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है अतः भक्ति को ही ग्रहण करना चाहिए। (८१)

भगवान के लीला, गुण महात्म्य, लीलास्वरूप अनुराग, सेवा उत्सवादि अनुराग, नाम स्मरण आदि ईष्ट अनुराग, दास्य, सख्य कान्त वात्सल्य आदि परमप्रभु से संबंध शरणागति अनन्य अनुराग परिपूर्ण आत्म निवेदन, तन्मयासक्त और आह्लाद परिपूर्ण परम विरहासक्त आदि मनः स्थिति के अनुसार यह भक्ति ग्यारह प्रकार की हैं यह भाव भक्त में पात्रानुसार विविध तरह से प्रकट होते हैं व अन्तः में गहरे उतरते है। (८२)

जन जन को जीवन की क्लेश व्यथा से छुटकारा पाने व निर्भय होने के लिए परम प्रभु की भक्ति ही करनी चाहिये सनकादि कुमार, व्यास शुकदेव, शाडिल्य, गर्ग, विष्णु, कौण्डिन्य शेष अद्धव आरूणि (श्रीनिम्बार्काचार्य) बली हनुमान व विभीषण आदि भक्ति के आचार्य एक मत से यह ही कहते है। (८३)

नारदजी के बताये कल्याकारी भक्ति अनुशासन का जो विश्वास श्रद्धा से अनुपालन करता हैं। वह जीव परम गहनता से परम प्रभु के निज लीला विहार नित्य निकुञ्ज में प्रवेश पावेगा। (८४)

श्री हसं भगवान, सनकादिक ब्रह्मकुमार व भक्ति तत्वज्ञ वैष्णवाचार्य देवर्षि नारद से दीक्षित आद्याचार्य श्री निम्बार्क भगवान द्वरा द्वापरान्त पर कलयुग में प्रवृत भक्ति की यह परम्परा अध्यावधि श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के रूप में प्रवाही है।

❑ ❑ ❑
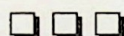
वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी

जगद्गुरु आद्यनिम्बार्काचार्य उपदिष्ट वेदान्त कामधेनु-दशश्लोकी

ध्यान

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषंऽशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।

जगद्गुरु श्री निम्बार्काचार्य जी ने वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी में जीव का स्वरूप, जड़-चेतन प्रकृति या माया का स्वरूप, परम ब्रह्म परमेश्वर का स्वरूप, पूजनीय भजनीय निर्मल निश्छल सर्वफलदात्री पराश्री राधाजी का स्वरूप बताया है। जीव को आज्ञानान्धकार से निवृत्ति के लिए परमेश्वर की निरन्तर उपासना का निर्देश दिया है जो सनन्दनादि परम ऋषि व देवर्षि नारद जी की परम्परा से उपदेशित किया हुआ है (6) सत-असत रुप में विद्यमान समस्त जगत, वस्तुयें व श्रुति स्मृतियों में व्यक्त विज्ञान यथार्थ है भोक्ता (जीव) भोग्य (प्रकृति) नियन्ता (श्री हरि) हैं। ब्रह्मात्मक प्रकृति के तीन रूप दैहिक, भौतिक व आध्यात्मिक

प्रवृत्ति को श्रुति स्मृत्ति सूत्रों के अनुसार यथाकाल यथापात्र यथायोग्य पालनीय बताया है। (7) निश्चयात्मक रूप से निष्कर्ष दिया है कि श्री कृष्ण पदारविन्द की भक्ति के अतिरिक्त जीव की कोई परम गति नहीं हैं। ब्रह्माशिवादि भी उन्हीं की वन्दना करते हैं वे श्री हरि भक्तों की इच्छा के अनुरूप जीव के कल्याण के लिए अवतार विग्रह धारण करते हैं परम-प्रभु सर्वेश्वर के मर्म स्वरूप को सम्पूर्ण तरह चिन्तन कर पाना, समझना व बता पाना सम्भव नहीं हो पाया है। श्री कृष्ण शरणागति भाव से परमानन्द का पाना ही एक मात्र परम गति है। (8) प्रभु कृपा से श्री हरि अनुरागी विषय प्रपञ्च रहित अत: करण में आत्म निवेदन रूप अनन्य परम प्रेम वाली भक्ति उत्पन्न होती हैं जिसे परा भक्ति कहते हैं यह अनन्य भगवद् भक्ति विशिष्ट निष्ठा वाले महात्माओं के हृदय में ही उत्पन्न होती है। अनन्य निष्ठा वाले महात्माओं की प्रदन्त दीक्षा व वाणी अनुपालन से सामान्य आस्तिक श्रद्धालुजन को भी भक्ति उपासना व साधना से अपरा भक्ति प्राप्त होती है जिससे सामान्य आस्तिक जन को भी भक्ति उपासना करने से परम प्रभु की कृपा प्राप्त हो जाती है। (9) वेदान्तदश श्लोकी के अन्त में जो जीव के कल्याण का पहलें बोध करा दिया उसको पांच प्रकरण में आबद्ध करते हुए कहते है अपना आध्यात्मिक अभ्युदय चाहने वाले साधु को जिज्ञासापूर्वक निम्न पांच तथ्यों का हार्दिक बोध कर लेना चाहिए।

उपास्य - ''ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षण हरिम्'' (4)

'स्मरेम देवीं सकलेष्ट कामदाम्' (5) समस्त प्राकृत गुण दोष से निर्लिप्त व कल्याणकारी गुण गण की प्रभा शक्ति श्री राधा कृष्ण की उपासना करें जो जगत कि उत्पति स्थिति व लय के नियामक है। यह बात हँस भगवान व श्री कृष्ण ने भी कही है-

मां भजन्ति गुणा सर्वे निर्गुणं निरपेक्षकम्।
सुहृदं प्रियमात्मानं साम्या सङ्गदयोऽगुणा।।

- भा. ११-१३-४०

मैं (श्री कृष्ण) समस्त गुनो का अधिष्ठाता प्रतिष्ठापक व आत्म शक्ति होते हुए सबसे निर्लिप्त सबका प्रियतम व हतैषी ''मां भजन्ति'' सब मेरा श्रीकृष्ण का भजन करते है।

अप्रत्तोऽनु युञ्जीत मनो मय्यर्पञ्छनैं।

आनर्विणों यथाकालं जितश्वासो जितासनः।।

- भा. ११-१३-१३

कल्याणकारी भक्त निश्छल मन से मेरे (श्रीकृष्ण के) शरणागत हो जावे। निश्छल निष्कपट सर्व समत्व प्रभा को आत्मा व परमात्मा का स्वरूप बताया और इस स्थिति को 'भूमा' कहा ओर बोध कराया कि यह परमात्मा में परम रमण कि चित्त भूमि ही सुख कर हैं

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं।

भूमा त्वेव विजिज्ञासितव्य इति।।

(छा. ७-२३-१)

सुख भूमा ही हैं अर्थार्थ आत्मा व परमात्मा ही सुख स्वरूप है अतः उस परमात्मा को ही जानने की जिज्ञासा करनी चाहिये। इष्ट निष्ठा से जीव समता से व आत्म दर्शन से परमात्मा को जाना चाहिये। नारद जी भी "परम" श्री कृष्ण व उनके 'प्रेम' को 'भक्ति' कहते अर्थार्थ परम प्रभु श्री कृष्ण को उपास्य कहते हैं। (२ भक्ति सूत्र)

उपासक - माया विषयक कष्टों की निवृत्ति व परम सुख प्राप्त्यार्थ जीव ही उपासक है। वे. का. दशश्लोकी के प्रथम श्लोक में जीव की ज्ञान स्वरूपता, अणु परिमाणकता दिव्य चेतन प्रभा बताकर देह क्षेत्र की सीमा में आबद्ध बताया। प्रत्येक देह में इस जीवात्मा की भिन्न - भिन्न अवस्थिति बताते हुये अन्तः बाह्य बोध सम्पन्न बताया जीवों की अनन्त योनि व संख्या बताई जीव को माया विषया कर्मप्रवृत्ति में प्रवृत्त, शरीर संयोग वियोग योग्य बताते हुए श्री हरि की नियंत्रक सनातन नीति के अधीन बताया।

हरि अधीन सनातन माया से आवृत्त या युक्त इस मायामय जगह के परिभ्रमण कर रहें क्लेश भोगी जीव परम सुख स्वरूपता को भगवद्कृपा से ही पा सकते है। माया विषय से निर्लिप्त जीव "मुक्त" कहलाते है। माया विषय से आसक्त जीव "बद्ध" है। प्रारब्ध कर्मो से जीवन धारण करके धर्माचरणपूर्वक आनासक्त जीवन जीते हुए भगवद् भक्त जीव "मुमुक्षु" कहलाते है। इन मुमुक्षु जीव को भी भगवत कृपा से विषय प्रवंचना व माया अहंकार की निवृत्ति पूर्वक हृदय आत्म निवेदन रूप दैन्यादि भाव (९) व अनन्य परम प्रेम विशेष लक्षणा भक्ति उत्पन्न हो गई है वे मुक्तजीव हैं। इन मुक्त जीवों पर प्रभु कृपा और परम बोध के कई भेद है।

कृपा फल - जीवन देना व जीवन में सब साधन प्रदान करना व विशेष अभ्युदय देकर सत संसर्ग व सत शास्त्रों का श्रवण स्वाध्याय सत विवेक पूर्वक धर्माचरण व भक्ति भाव में लगाना, यह प्रभु की कृपा है, यू तो दशश्लोकी में प्रभु कृपा का सर्वत्र दिग्दर्शन है किन्तु विशेषत: दो छ: सात आठ व नोंवे श्लोक में विशिष्ट निर्देश है।

भक्ति रस - प्रभु कृपा परिणामत: निर्मल चित्त वृत्ति होना व रसेश्वर रासेश्वर युगल प्रभु में अनन्य परम प्रेम का उदय होना ही भक्तिरस है (श्लोक-८)

भक्ति रस - भक्ति व रस यहाँ दानों का विशेष संयोग है जिसे "भवेद प्रेम विशेष लक्षणा" से कहा।

रस "रसो वै स:" श्रुति वचन परम प्रभु परमात्मा के लिए हैं और भक्ति उन परम प्रभु में अनन्यभाव से अनुरक्त होकर भजन करने के लिए है। "रसो ह्येवाय आनन्दी भवति" उन रसेश्वर को आस्था विश्वास श्रद्धा भाव से प्राप्त करके आनन्दित होना यह ही भक्ति रस है। जिसे नारद जी "परम प्रेम" कहा "भूमा" करण में "सुख" कहा हंसोपाख्यान में "छिन्न संदेहा" "समाजयित्वा परमा भक्तागृणत संस्तवै:।।(४१) संशय रहित परम अनुराग भाव से प्रभु की सेवा पूजा स्तुति - संकीर्तन व महिमा गान करना भक्ति रस है।"

भक्ति विरोधी - अधर्म अविवेक काम विषयान्तर्गत कृत्ति वृत्ति ही भक्ति विरोधी है।

पूर्वाचार्यों श्री नारद आदि ने भी इन तत्वो पर विशेष उपदेश दिया है। इस रस स्वरूप परमात्मा की उज्जवल मधुर रससिक्त भक्ति का निर्देश है। श्री निम्बार्काचार्य व पूर्वोचार्यों का उपासना से अन्तिम ध्येय सबन्धी कथन जीव अहं से समतावादी बह्मवादी या आत्मा का परमात्मा में विलयीकरण नही है वरन् "भक्तेच्छयोपात्तसुचित्यविग्रहाऽ चिन्त्य शक्ते रविचिन्त्य सायताम्" (८) भक्तो की इच्छानुसार सौंदर्य सौकुमार्य माधुंय लावण्य कारुण्य मार्दवादि सुन्दर मनोहर गुण सम्पन्न लीला विग्रह धारण करने वाले अचिन्त्य अपार महिमा सम्पन्न सर्वेश्वर सर्वनियन्ता कृपा आनन्द वर्षा करने वाले है।

वेदान्त कामधेनु दशश्लोकी

जगद्गुरु आद्यनिम्बार्काचार्य प्रणीत वेदान्त कामधेनु-दशश्लोकी

परम पूज्य श्री ''श्रीजी'' श्री राधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य महाराज कृत
''नवनीत सुधा'' के अनुसार।।

[1] चित्स्वरूपम्

ज्ञानस्वरूपञ्च हरेरधीनं शरीरसंयोगवियोगयोग्यम्।
अणुं हि जीवं प्रतिदेहभिन्नं ज्ञातृत्ववन्तं यदनन्तमाहुः।।

यह जीवात्मा ज्ञानस्वरूप नित्य चेतन ज्योतिस्वरूप अर्थात् प्रकाश स्वरूप है तथा ज्ञातृत्ववान् अर्थात् ज्ञानाधिकरण ज्ञान का आश्रय है। यह जीवात्मा सर्वान्तरात्मा सर्वेश्वर श्रीहरि के सर्वदा अधीन है सभी अवस्थाओं में परतन्त्र है, परिमाण में यह अणुरूप अतिन्द्रिय है, नाना शरीरों के साथ संयोग-वियोग योग्य प्रत्येक देह में भिन्न-भिन्न और अनन्त है — वेदान्त वचन एवं महर्षियों के उपदेश इसी का प्रतिपादन करते हैं।

[2]

अनादिमायापरियुक्तरूपं त्वेनं विदुर्वै भगवत्प्रसादात्।
मुक्तञ्च बद्धं किल बद्धमुक्तं प्रभेदबाहुल्यमथापि बोध्यम्।।

ज्ञान स्वरूप एवं ज्ञातृत्ववान् होने पर भी जीव परात्पर परब्रह्म सर्वेश्वर श्री हरि की

अनन्त अचिन्त्य अघटघटनापटीयसी अनादिकर्मात्मिका त्रिगुणात्मिका माया से परिव्याप्त है अतएव अपने स्वरूप का यथार्थ बोध नहीं कर पाता, परन्तु उन सर्वज्ञ अखिलान्तरात्मा श्री हरि की जब अहैतुकी कृपा हो जाती है तब वह जीव अपने स्वरूप का यथार्थ परिज्ञान करने में समर्थ हो जाता है। बद्ध और मुक्त भेद से द्विविधरूप जीवात्मा बुभुक्षु-मुमुक्षु इत्यादि विविध भेदों में विभक्त रूप से अवस्थित है।

[3] अचित्स्वरूपम्

अप्राकृतं प्राकृतरूपकञ्च कालस्वरूपं तदचेतनं मतम्।
मायाप्रधानादिपदप्रवाच्यं शुक्लादिभेदाश्च समेऽपि तत्र।।

ज्ञानस्वरूपता एवं ज्ञातृत्व शक्ति से रहित को 'अचेतन' कहते हैं जो तीन रूप में विद्यमान है अप्राकृत-प्राकृत तथा कालस्वरूप। इनमें 'माया' 'प्रधान' प्रभृति शब्दों से अभिहित त्रिविध गुणों का आश्रय 'प्राकृत' रूप अचेतन कहा गया है जो शुक्ल-कृष्णादि भेद से विद्यमान है। प्राकृत तथा काल से विलक्षण प्रकाश स्वरूप नित्य दिव्य भगवद्धाम को अप्राकृत अचेतन में प्रतिपादित किया गया है। (प्राण कला, हृदय धड़कन व श्वास गति की तरह जो गतिशील है जो भूत वर्तमान व भविष्य कहलायेगा वह काल है।)

[4] ब्रह्म-स्वरूपम्

स्वभावतोऽपास्तसमस्तदोषंऽशेषकल्याणगुणैकराशिम्।
व्यूहाङ्गिनं ब्रह्म परं वरेण्यं ध्यायेम कृष्णं कमलेक्षणं हरिम्।।

जो स्वाभाविक रूप से यावन्मात्र निखिल दोषों से रहित हैं। सौन्दर्य-सौकुमार्य-माधुर्य लावण्य, कारूण्य, मार्दवादिअनन्त दिव्य गुणों के असीम परमनिधि हैं। वासुदेव संकर्षण, प्रद्युम्न एवं अनिरूद्ध प्रभेद से चतुर्व्यूह एवं नानाविध अवतारों के जो मूल अङ्गी हैं। विधि-शिव-पुरन्दरादि सुरवृन्दों एवं पराभक्तिपरायण रसिक प्रपन्नभक्तों द्वारा सर्वदा वरेण्य अर्थात् परम उपासनीय है। ऐसे नयनाभिराम अरविन्दलोचन परात्पर परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीहरि भगवान श्रीकृष्ण का हम सभी अनन्त जीवात्मा प्रतिपल ध्यान करें।

[5] ब्रह्म स्वरूप

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा विराजमानामनुरूपसौभगाम्।
सखीसहस्त्रैः परिसेवितां सदा स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्।।

ऐसे अनन्तदिव्यगुणगणनिलय सर्वेश्वर सर्वद्रष्टा भगवान श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में परमानन्द

पूर्वक नित्य विराजमान उन्हीं अनन्तकृपासिन्धु श्री प्रभु के अनुरूप सौन्दर्यमाधुर्यस्वरूपा परमा ह्लादिनी श्रीवृषभानुनन्दिनी अतिशय सुशोभित हैं। अगणित नित्य सखी परिकर से प्रतिपल संसेवित हैं। प्रपन्न रसिक भगवद्-भक्तों के मङ्गलमय मनोरथों को पूर्ण करने वाली श्रुति प्रतिपाद्य देवी श्रीराधिका का हम समस्त जीव मात्र सर्वदा स्मरण करें।

[6] उपासना

उपासनीयं नितरां जनैः सदा प्रहाणयेऽज्ञानतमोऽनुवृत्तेः।
सनन्दनाद्यैर्मुनिभिस्तथोक्तं श्रीनारदायाखिलतत्त्वसाक्षिणे।।

जागतिक अज्ञानान्धकार जिससे प्राणी सर्वदा विविध कष्टानुभूति करता है, उसकी सर्वथा निवृत्ति के लिए भगवज्जनों को भगवान श्री राधाकृष्ण की सर्वविध रूप से निरन्तर उपासना करनी चाहिए। उक्त उपासना परम्परा का श्रीसनकादि महर्षियों ने निखिलतत्त्वसाक्षी सर्ववेत्ता देवर्षिवर्य श्रीनारदजी जो हमारे सर्वस्व भगवत्स्वरूप श्रीगुरुदेव हैं, उन्हें यह उपेदश प्रदान किया और यही उपदेश श्रीदेवर्षि से हमें प्राप्त हुआ। अतः इसी युगल-उपासना का श्रीभगवद्दर्शनाभिलाषी परम रसिक भावुक उपासकों के हितार्थ यहाँ निर्देश किया है। वस्तुतः उक्त श्लोक में निर्दिष्ट अपनी उपासना गुरु परम्परा का प्रतिपादन भी स्पष्ट है, इससे श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय का अनादित्व एवं वैदिकत्व भी सम्यक् प्रकार अभिव्यञ्जित हुआ है।

[7] द्वैता द्वैत तत्त्व

सर्वं हि विज्ञानमतो यथार्थकं श्रुतिस्मृतिभ्यो निखिलस्य वस्तुनः।
ब्रह्मात्मकत्वादिति वेदविन्मतं त्रिरूपताऽपि श्रुतिसूत्रसाधिता।।

विचित्ररचनारूप चेतनाचेतनात्मक यह समग्र जगत ब्रह्मात्मक है। पुराणपुरुषोत्तम परब्रह्म सर्वेश्वर श्रीकृष्ण समस्त जगत् की एकमात्र अन्तरात्मा है सुतरां सम्पूर्ण विज्ञान ध्रुव रूप से यथार्थक है। भोक्ता, भोग्य, नियन्ता यह त्रिविध त्रिरूपता श्रुति सूत्र-स्मृति द्वारा भिन्न स्वरूप प्रतिपादित होने से यह ब्रह्म से भिन्न भी है। एवंविध यह चेतनाचेतनात्मक जगत् ब्रह्म से भिन्न भी है एवं अभिन्न भी वस्तुतः यही स्वाभाविक भिन्नाभिन्न, भेदा-भेद या स्वाभाविक द्वैताद्वैत सिद्धान्त है इसे ही वेदतत्त्वज्ञ श्रीसनकादि महर्षि एवं श्रीनारदादिदेवर्षि या महर्षि व्यास ने प्रतिपादित किया।

[8] शरणागति

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात् संदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।

भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्।।

ब्रह्मशिवादिवन्दित भगवान श्रीकृष्ण के युगलपदारविन्द के अतिरिक्त जीवों के लिए अन्य कोई गति अर्थात् मार्ग या अवलम्ब दृष्टिगत ही नहीं है। शरणापन्न भक्तों की उत्तम इच्छा के अनुरूप मङ्गलमय विग्रह स्वरूप धारण करने वाले अचिन्त्य शक्ति स्वरूप विधि-शिव-पुरन्दरादि द्वारा जिनके आशय को समझना अचिन्त्य एवं अतर्क्य है। अतः एवं भगवान श्रीकृष्ण के चरणकमल के बिना कोई मार्ग अर्थात् शरण्य नहीं है। श्रीभगवत्-शरणागति ही इस श्लोक का अति संक्षिप्त भावार्थ है।

[9] परा-अपरा भक्ति

कृपास्य दैन्यादियुजि प्रजायते यया भवेत्प्रेमविशेषलक्षणा।
भक्तिर्ह्य नन्याधिपतेर्महात्मनः सा चोत्तमा साधनरूपिकाऽपरा।।

अनन्त कृपापयोधि भगवान श्रीकृष्ण की अनिर्वचनीय कृपा, दैन्यादि लक्षण समन्वित शरणागत भक्तों पर होती है। जिस दिव्य भगवदीय कृपा से उन दयार्णव सर्वेश्वर के पादपद्मों में जो भक्ति है वही फलरूपा एवं प्रेमलक्षणा उत्तमा पराभक्ति कही गई है, और यह पराभक्ति उन अनन्य रसिकेशेखर महात्माओं के अन्तःकरण में ही आविर्भूत होती है तथा बहुजन्मार्जित सत्कर्म साधन से प्राप्त होने वाली साधनरूपा अपरा भक्ति कहलाती है। यही इस श्लोक का संक्षिप्त भावार्थ है।

[10] अर्थ पञ्चक विवेक

उपास्य रूपं तदुपासकस्य च कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्ते र्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः।।

(१) उपास्य — परात्पर रसपरब्रह्म नित्यनवयुगलकिशोर सर्वेश्वर श्रीराधाकृष्ण के दिव्य स्वरूप का परिज्ञान (२) उपासक — इस जीवात्मा के स्वरूप का ज्ञान (३) कृपाफल — भगवान श्री राधाकृष्ण की कृपा का श्रीभगवत्प्राप्ति फल (४) भक्तिरस — अर्थात् श्रीराधासर्वेश्वर प्रभु के युगलपदाम्बुजों में अनन्य परा भक्ति। (५) विरोधी स्वरूप — अर्थात् श्रीभगवद्विग्रह में प्राकृत बुद्धि करना, भगवत्परक मंत्रों को सामान्य शब्द श्रीभगवद् गाथाओं में संदेह प्रकट करना आदि तथा काम, क्रोध, लोभ-मोहादि ये सभी भगवत्प्राप्ति में परम विरोधी रूप हैं। एवंविध इन पाँच प्रकार के अर्थपञ्चक का साधकजनों को अवश्य ही परिज्ञान करना नितान्त आवश्यक है।
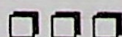
प्रातः स्तवराज

जगद्गुरु आद्यनिम्बार्काचार्य प्रणीत प्रातः स्तवराज

परम पूज्य श्री ''श्रीजी'' श्री राधासर्वेश्वर शरण देवाचार्य महाराज कृत
''युग्म तत्त्व प्रकाशिका'' के अनुसार।।

प्रातः स्मरामि युगकेलिरसाभिषिक्तं, वृन्दावनं सुरमणीयमुदारवृक्षम्।
सौरीप्रवाह वृतमात्मगुणप्रकाशं ,युग्माङ्घ्रिरेणुकणिकाञ्चितसर्वसत्वम्।।१।।

भावार्थ — नित्यनिकुञ्जबिहारी युगलकिशोर श्यामाश्याम श्री राधा माधव प्रभु के परम दिव्य लीलाविहार रस से अभिषिक्त तथा कलिन्दतनया श्रीयमुना के गम्भीर धारा प्रवाह से सर्वदा समन्वित और अपने दिव्यातिदिव्य लोकोत्तर अनिर्वचनीय गुण समूह से प्रकाशमान, श्री युगल प्रिया-प्रियतम के ललित चरणारविन्द रज रेणु कणिका से जहां के समस्त प्राणीमात्र परम पवित्र हैं ऐसे कल्पवृक्ष स्वरूप परम सुन्दर परम रमणीय श्रवृन्दावन धाम का मैं प्रात:काल स्मरण करता हूँ।।१।।

प्रातः स्मरामि दधिघोषविनीतनिद्रं निद्रावसानरमणीयमुखानुरागम्।
उन्निद्रपद्मनयनं नवनीरदाभं हृद्यानवद्यललनाञ्चितवामभागम्।। २।।

भावार्थ — प्रात:काल व्रजवनिताओं द्वारा किये गये दधिमन्थन के गम्भीर-घोष (शब्द) के श्रवण से जिनकी निद्रा खुल चुकी है, निद्रा के खुलने पर जिनके मुखारविन्द

की शोभा अत्यन्त रमणीय दिखाई दे रही है, उन खिले हुए कमल के सदृश नेत्र और नवीन मेघ के समान कान्ति को धारण करने वाले निरन्तर सौन्दर्य माधुर्य लावण्यादि विविध गुण विशिष्ट परमाह्लादिनी रासेश्वरी श्रीराधिकाजी के द्वारा पूजित अर्थात् शोभायमान वामाङ्ग वाले भगवान श्रीसर्वेश्वर श्यामसुन्दर प्रभु का मैं प्रभात समय स्मरण करता हूँ।।२।।

प्रातर्भजामि शयनोत्थितयुग्मरूपं सर्वेश्वरं सुखकरं रसिकेशभूपम्।
अन्योन्यकेलिरसचिह्न सखी दृ गौधं सख्यावृतं सुरतकाममनोहरं च।।३।।

भावार्थ — शयन से उठने पर युगल सरकार श्रीप्रियप्रियतम जो समस्त चराचर मात्र के ईश्वर हैं तथा सबको सुख देने वाले ओर रसिक-शिरोमणि जिनके पारस्परिक रससिक्त लीला के विहार चिह्नों से सखियां रसोन्मत्त है, श्रीरंगदेवी, ललिता विशाखादि अनन्त सखियां तथा जो सुन्दर क्रीड़ाओं से मन्मथ के भी मन को हरण कर रहे हैं, ऐसे उन युग्मः रूप श्रीराधामाधव का प्रातःकाल मैं भजन करता हूँ। ।।३।।

प्रातर्भजे सुरतसारपयोधिचिन्हं गण्डस्थलेन नयनेन च संदधानौ।
रत्याद्यशेषशुभदौ समुपेतकामौ श्रीराधाकावरपुरन्दरपुण्यपुञ्जौ।४।।

भावार्थ — अन्तररंग लीलाओं के मूल महोदधि चिन्हों को कपोलस्थल एवं नेत्रों द्वारा धारण करने वाले, प्रेम-भक्ति मोक्षादि अशेष शुभ पदार्थों को देने वाले एवं सम्प्राप्त नन्द-वृषभानु के पुण्यपुञ्ज भगवान् श्री राधाकृष्ण को मैं प्रभात में भजना हूँ।।४।।

प्रातर्धरामि हृदयेन हृदीक्षणीयं युग्मस्वरूपमनिशं सुमनोरमं च।
लावण्यधाम ललनाभिरुपेयमानमुत्थाप्यमानमनुमेयमशेषवेषैः।।५।।

भावार्थ — हृदय में ध्यान करने योग्य सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्यादि अनन्त गुणों के धाम (निधि) सहचरियों द्वारा संप्राप्य और संसेवित तथा समग्र रचनाओं द्वारा अनुमान करने योग्य, निद्रा से उठाये हुए परम सुन्दर श्रीयुगलस्वरूप का मैं अपने हृदय में निरन्तर ध्यान करता हूँ।।५।।

प्रातर्ब्रवीमि युगलावपिसोमराजौ राधामुकुन्दपशुपालसुतौ वरिष्ठौ।
गोविन्दचन्द्रवृषभानुसुतावरिष्ठौ सर्वेश्वरौ स्वजनपालनतत्परेशौ।।६।।

भावार्थ — चन्द्रमा से भी अत्यन्त मनोहर अथवा चन्द्रमणियों में अति श्रेष्ठ किंवा यज्ञाङ्गभूत सोमलता विशेष अथवा अमृत स्वरूप आनन्द कन्द वरिष्ठ पशुपाल, नन्दवृषभानु के सुत सुता श्रीराधामुकुन्द गोविन्दचन्द्र और वृषभानुजा अत्यन्त मनोहर परम श्रेष्ठ सकल चराचर मात्र के नियनता अपने शरणागतजनों के पालन में तत्पर सर्वेश्वर श्री युगल-सरकार के मङ्गलमय दिव्य नामों का मैं प्रातःकाल उच्चारण करता हूँ।।६।।

प्रातर्नमामि युगलाङ्घ्रिसरोजकोशमष्टाङ्गयुक्तवपुषा भवदुःखदारम्।
वृन्दावने सुविचरन्तमुदारचिह्नं लक्ष्म्या उरोजधृतकुङ्कुमरागपुष्टम्।।७।।

भावार्थ — नित्य दिव्य श्रीवृन्दावनधाम में नानाविध रूप से विहरण करने वाले उदार अर्थात समस्त मनोरथों को पूर्ण करने योग्य वेष-भूषा, आभूषणादि युक्त, परमाह्लादिनी शक्ति श्रीराधिकाजी द्वारा निज वक्षःस्थल पर धारण किये कुंकुमरागादि से सम्पन्न अतएव विशिष्ट लालित्य समन्वित और सम्पूर्ण संसार के दुखों को विनष्ट करने वाले श्रीयुगलकिशोर के चरणारविन्दों में अपने आठों अङ्गों से मैं प्रातःकाल नमस्कार करता हूँ।।७।।

प्रातर्नमामि वृषभानुसुतापदाब्जं नेत्रालिभिः परिणुतं व्रजसुन्दरीणाम्।
प्रेमातुरेण हरिणा सुविशारदेन श्रीमद्व्रजेशतनयेन सदाऽभिवन्द्यम्।। ८।।

भावार्थ — भम्रर रूपी व्रजगोपियों के नेत्र समूह जिनकी स्तुति करते हैं और परम चतुर प्रेमाकुल नन्दनन्दन श्रीहरि जिनकी सदा वन्दना करते हैं श्रीवृषभानुसुता श्री राधिकाजी के उन चरण कमलों को मैं प्रातः काल नमस्कार करता हूँ।।८।।

सञ्चिन्तनीयमनुमृग्यमभीष्टदोहं संसारतापशमनं चरणं महार्हम्।
नन्दात्मजस्य सततं मनसा गिरा च संसेवयामि वपुषा प्रणयेन रम्यम्।।९।।

भावार्थ — ब्रह्मादि देवों द्वारा अन्वेषण किये जाने वाले अथवा विविध साधना द्वारा अन्वेषण करने योग्य, अभिमत फल को देने वाले संसार के समस्त तापों के शमन अर्थात् नाश करने वाले परमोत्तम परम रमणीय सम्यक् प्रकार से ध्यानकरने योग्य भगवान् श्रीश्यामसुन्दर के चरण-कमलों को मन, वाणी तथा प्रणय पूर्वक शरीर से सेवन करता हूँ।।९।।

प्रातः स्तवमिमं पुण्यं प्रातरुत्थाय यः पठेत्।

सर्वकालं क्रियास्तस्य सफलाः स्युः सदा ध्रुवाः।।१०।।

भावार्थ — जो कोई भी मनुष्य इस परम पुण्यतम श्रीयुगल रूप के प्रातःकालीन स्तव का पाठ करेगा, उसकी समस्त क्रियायें इच्छायें सर्वदा सर्व समय में सफल होंगी। यह ध्रुव अर्थात् निश्चित है।।१०।।
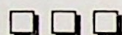
जगद्गुरुआद्यनिम्बार्काचार्य प्रणीत श्रीराधाष्टकम्

नमस्ते श्रियै राधिकाये परायै नमस्ते नमस्ते मुकुन्दप्रियायै।

सदानन्दरूपे प्रसीद त्वमन्तःप्रकाशे स्फुरन्ती मुकुन्देन सार्धम्।।१।।

श्री राधिके! तुम्हीं श्रेय मार्ग की अधिष्ठात्री हो, तुम्हें नमस्कार है, तुम्हीं पराशक्ति राधिका हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम मुकुन्द की प्रियतमा हो, तुम्हें नमस्कार है। सदानन्दस्वरूपे देवि! तुम्हीं मेरे अन्तःकरण के प्रकाश में श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के साथ सुशोभित होती हुई मुझपर प्रसन्न होओ।।१।।

स्ववासोपहारं यशोदासुतं वा स्वदध्यादिचौरं समाराधयन्तीम्।

स्वदाम्नोदरे या बबन्धाशु नीव्या प्रपद्ये नु दामोदरप्रेयसीं ताम्।।२।।

जो अपने वस्त्र का अपहरण करने वाले अथवा अपने दूध-दही, माखन आदि चुरानेवाले यशोदानन्दन श्रीकृष्ण की साधना करती हैं, जिन्होंने अपनी नीवी (प्रेम) के बन्धन से श्रीकृष्ण के उदर (रस) को शीघ्र ही बांध लिया, जिसके कारण उनका नाम 'दामोदर' हो गया; उन दामोदर की प्रियतमा श्री राधा-रानी की मैं निश्चय ही शरण लेता हूँ।।२।।

दुराराध्यामाराध्य कृष्णं वशे त्वं महाप्रेमपूरेण राधाऽभिधाऽभूः।
स्वयं नामकीर्त्या हरौप्रेम यच्छ प्रपन्नाय मे कृष्णरूपे समक्षम्।।३।।

श्री राधे! जिनकी आराधना कठिन है, उन श्रीकृष्ण की भी आराधना करके तुमने अपने महान् प्रेमसिन्धु की बाढ़ से उन्हें वश में कर लिया। श्रीकृष्ण की आराधना के कारण तुम राधानाम से विख्यात हुई। श्रीकृष्णस्वरूपे! अपना यह नामकरण स्वयं तुमने किया है, इससे अपने सन्मुख आये हुए मुझ शरणागत को श्री हरिका प्रेम प्रदान करो।।३।।

मुकुन्दस्त्वया प्रेमदोरेण बद्धः पतङ्गो यथा त्वामनुभ्राम्यमाणः।
उपक्रीडयन् हार्दमेवानुगच्छन् कृपा वर्तते कारयातो मयीष्टिम्।।४।।

तुम्हारी प्रेम डोर में बँधे हुए भगवान श्री कृष्ण पतंग की भाँति सदा तुम्हारे आस-पास ही चक्कर लगाते रहते हैं, हार्दिक प्रेम का अनुसरण करके तुम्हारे पास ही रहते हुए क्रीडा करते हैं। देवि! तुम्हारी कृपा सबपर है, अतः मेरे द्वारा अपनी आराधना करवाओ।।४।।

ब्रजन्तीं स्ववृन्दावने नित्यकालं मुकुन्देन साकं विधायाङ्कमालम्।
सदा मोक्ष्यमाणाऽनुकम्पाकटाक्षैः श्रियं चिन्तयेत् सच्चिदानन्दरूपाम्।।५।।

जो प्रतिदिन नियत समयपर श्रीश्यामसुन्दर के साथ उन्हें अपने अङ्कको माला अर्पित करके अपनी लीलाभूमि-वृंदावन-में विहार करती हैं, भक्तजनों पर प्रयुक्त होने वाले कृपा-कटाक्षों से सुशोभित उन सच्चिदानन्दस्वरूपा श्री लाड़िली का सदा चिन्तन करे।।५।।

मुकुन्दानुरागेण, रोमाञ्चिताङ्गैरहं व्याप्यमानां तनुस्वेदविन्दुम्।
महाहार्दवृष्ट्या कृपापाङ्गदृष्ट्या समालोकयन्तीं कदा त्वां विचक्षे।। ६।।

श्री राधे! तुम्हारे मन-प्राणों में आनन्दकन्द श्री कृष्ण का प्रगाढ अनुराग व्याप्त है, अतएव तुम्हारे श्रीअङ्ग सदा रोमाञ्चसे विभूषित हैं और अंग-अंग सूक्ष्म स्वेद-बिन्दुओं से सुशोभित होता है। तुम अपनी कृपा-कटाक्ष से परिपूर्ण दृष्टिद्वारा महान प्रेम की वर्षा करती हुई मेरी ओर देख रही हो; इस अवस्था में मुझे कब तुम्हारा दर्शन होगा?।।६।।

यदाङ्कावलोके महालालसौघं मुकुन्दः करोति स्वयं ध्येयपादः।
पदं राधिके ते सदा दर्शयान्तर्हृदीस्थं नमन्तं किरद्रोचिषं माम्।। ७।।

श्री राधिके ! यद्यपि श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण स्वयं ही ऐसे हैं कि उनके चारू-चरणों का चिन्तन किया जाए, तथापि वे तुम्हारे चरण-चिह्नों के अवलोकन की बड़ी लालसा रखते हैं। देवि! मैं नमस्कार करता हूँ। इधर मेरे अन्तः करण के हृदय-देश में ज्योति-पुञ्ज बिखेरते हुए अपने चिन्तनीय चरणारविन्द का मुझे दर्शन कराओ।।७।।

सदा राधिकानाम जिह्वाग्रतः स्यात् सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम्।
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तः स्वभावे गुणा राधिकायाः श्रिया एतदीहे।।८।।

मेरी जिह्वा के अग्रभागपर सदा श्रीराधिका का नाम विराजमान रहे । मेरे नेत्रों के समक्ष सदा श्रीराधा का ही रूप प्रकाशित हो। कानों में श्रीराधिका की कीर्ति-कथा गूँजती रहे और अन्तर्हदय में श्रेय अधिष्ठात्री श्रीराधा के ही असंख्य गुणगणों का चिन्तन हो, यही मेरी शुभ कामना है।।८।।

इदं त्वष्टकं राधिकायाः प्रियायाः पठेयुः सदैवं हि दामोदरस्य।
सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः।। ९।।

दामोदरप्रिया श्री राधा की स्तुति से संबंध रखने वाले इन आठ श्लोकों का जो लोग सदा इसी रूप में पाठ करते हैं, वे श्रीकृष्णधाम वृन्दावन में युगल सरकार की सेवा के अनुकूल सखी-शरीर पाकर सुख से रहते हैं।।९।।

श्रीमुकुन्दस्मरणाष्टकम्

जगद्‌गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर
श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य महाराज विरचित

कदम्बकुञ्जावलिशोभमानं, वेणुं क्वणन्तं यमुनाप्रतीरे।
श्रीराधया सार्द्धमुपासनीयं, श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

वृन्दावने नित्यनिकुञ्जमध्ये, हिरण्यसिंहासनराजमानम्।
सखीकदम्बैः सह सेव्यमानं श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

लावण्य - कारुण्यगुणैकधाम, वीधीशदेवेन्द्रसुमृग्यमाणम्।
वेदैः पुराणै-र्नितरां प्रगेयं श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

गन्धर्वगेयं श्रुतिमन्त्रवर्ण्यं, व्रजे वसन्तं व्रजजीवनञ्च।
सद्भिः प्रभातेऽनुदिनं प्रगीतं श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

यतीन्द्र-योगीन्द्र-मुनीन्द्रवृन्दै-र्ध्येयञ्च चित्ते सनकादिवर्यैः।
सर्वेश्वरं कृष्णमनन्तरूपं, श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

व्रजाङ्गनाभिः सह रासलीलां, नित्यं लसन्तं व्रजमञ्जुकुञ्जे।
कदम्ब-जम्बू-तरुसान्द्रपूर्णे, श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

भृङ्गाऽच्छपुञ्जाऽतिसुगुञ्जितेच, लतावलीपादपपुञ्जरम्ये।
कदम्बवृक्षोपरि शोभमानं, श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

मायूरपिच्छाऽऽप्तसुमौलिनञ्च, व्रजेश्वरं राधिकया हि सार्द्धम्।
सखीजनैश्चारुसु कीर्तनीयं, श्रीमन्मुकुन्दं मनसा स्मरामि।।

श्रीयुग्मभक्तिदं स्तोत्रं मुकुन्दस्मरणाष्टकम्।
राधासर्वेश्वराद्येन शरणान्तेन निर्मितम्।।

!! श्रीराधासर्वेश्वरो विजयते !!

यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखं भूमत्वेव विजिज्ञासितव्य इति।भूमानं भगवो विजिज्ञास इति।

यत्र नान्यत् पश्यति नान्यच्छृणोति नान्यद्विजानाति स भूमाथयत्रान्यत्पश्यत्यन्यच्छृणोत्यन्यद्विजानाति तदल्पं यो वै भूमा तदमृतमथयदल्पं तन्मर्त्यं स भगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति। स्वे महिम्नि यदि वा न महिम्नीति।

गो अश्वमिह महिमेत्याचक्षते हस्तिहिरण्यं दासभार्य्यं क्षेत्राण्यायतनानीति नाहमेवं ब्रवीमि ब्रवीमीति होवाचान्यो ह्यन्यस्मिन् प्रतिष्ठित इति ।

स एवाधस्तात् स उपरिष्टात्स पश्चात् स पुरस्तात् स दक्षिणतः स उत्तरतः स एवेद ँ सर्वमित्यथातोऽहंकारादेश एवाहमेवाधस्तादहमुपरिष्टादहं पश्चादहं पुरस्तादहं दक्षिण तोऽहमुत्तरतोऽहमेवेद ँ सर्वमिति।

अथात आत्मादेश एवात्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं ँ सर्व मिति स वा एष एवंपश्यन्नेवमन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड्भवति तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति। अथ येऽन्यथातो विदुरन्यराजानस्तेक्षय्यलोका भवन्ति तेषा ँ सर्वेषु लोकेष्व कामचारो भवति।

आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षस्तस्मै मृदितकषायाय तमसस्पारं दर्शयति।

राष्ट्रीय संस्कृत साहित्य केन्द्र
222, सरस्वती सदन, बिहारी जी गली,
सौखियों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर-302 001

ISBN : 978-81-88741-51-9

Rs. : 15.00